शैक्षणिक संदर्भ

वर्ष: 17 अंक 97 (मूल क्रमांक 154)
सितम्बर-अक्टूबर 2024 मूल्य: ₹ 50.00

सम्पादन
राजेश खिंदरी
माधव केलकर

सह-सम्पादक
पारुल सोनी

सहायक सम्पादक
अतुल वाधवानी

सम्पादकीय सहयोग
हिमांशु बावनकर

सम्पादकीय सलाहकार
सुशील जोशी
उमा सुधीर

आवरण
राकेश खत्री

वितरण: झनक राम साहू

सहयोग
कमलेश यादव

शैक्षणिक
संदर्भ

वर्ष: 17 अंक 97 (मूल क्रमांक 154)
सितम्बर-अक्टूबर 2024

मूल्य: ₹ 50.00

एकलव्य फाउण्डेशन
जमनालाल बजाज परिसर
जाटखेड़ी, भोपाल-462 026 (म.प्र.)
फोन: +91 755 297 7770, 71, 72, 4200944
www.sandarbh.eklavya.in
सम्पादन: sandarbh@eklavya.in
वितरण: circulation@eklavya.in

अब *संदर्भ* आप तक पहुँचेगी रजिस्टर्ड पोस्ट से।

सदस्यता शुल्क	एक साल (6 अंक)	तीन साल (18 अंक)	आजीवन
	450.00	1200.00	8000.00

मुखपृष्ठ: *मादा डाउनी वुडपैकर (बाएँ) और आक्रामक हेयरी वुडपैकर (दाएँ) के चित्र।* एक ही भौगोलिक क्षेत्र में, एक ही पक्षी की दो अलग-अलग प्रजातियाँ एक-सी क्यों दिखती हैं? क्या यह भी पक्षियों की नकल या मिमिक्री का उदाहरण तो नहीं? जानिए पक्षियों की मिमिक्री के पीछे के कई रोचक कारणों को, संकेत राउत के लेख में, पृष्ठ 5 पर।

पिछला आवरण: *परमाणु बम के प्रथम परीक्षण 'ट्रिनिटी' के बम विस्फोट और परीक्षण के प्रधान-वैज्ञानिक ओपेनहाइमर का सम्मिश्रित चित्र।* इस वैज्ञानिक के कथनानुसार, उनके हाथ खून से रंग चुके थे। मगर क्या वैज्ञानिकों के श्रम का (दु:)उपयोग युद्ध-अस्त्र के रूप में किया जाना, इन वैज्ञानिकों को मानवता के विपक्ष में खड़ा करता है? इस पेचीदा और अहम सवाल की विवेचना के लिए उनके सन्दर्भ को समझना ज़रूरी होगा। इसके लिए पढ़िए हरिशंकर परसाई का यह लेख, पृष्ठ 21 पर।

यह अंक त्रिवेणी एजुकेशनल ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है।

LINK : कवर 1 - http://www.mpnature.com/birds/species/DOWO-HAWO.html

कवर 3 - https://medium.com/@vegasbees/the-secrets-of-honeycomb-a-look-inside-bee-engineering-764882a7ba12

कवर 4 - https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Oppenheimer-j_r.jpg; https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Trinity_shot_color.jpg

हमारी नई किताब

स्रोत वर्ग पहेली संकलन

आधी पलटन एक हज़ार

मूल्य: ₹60

एक दिलचस्प गतिविधि के ज़रिए विज्ञान की दुनिया का मज़ेदार सफर करवाने के लिए तैयार की गई यह किताब एकलव्य की विज्ञान पत्रिका स्रोत में प्रकाशित वर्ग पहेलियों का संकलन है। शब्दों के हेर-फेर, भाषा-ज्ञान और विज्ञान के तथ्यों पर आधारित ये वर्ग पहेलियाँ मनोरंजक तो हैं ही, तरह-तरह की जानकारियों से भी भरपूर हैं। किशोरों के साथ-साथ आम पाठकों के लिए भी एक उपयोगी किताब।

अपनी प्रति खरीदने के लिए सम्पर्क करें–

एकलव्य फाउंडेशन
जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (मप्र)
फोन: **+91 755 297 7770-71-72**; ईमेल: **pitara@eklavya.in**
www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

एकलव्य

स्वाद की पहचान

स्वाद केवल जीभ से जुड़ा नहीं होता - क्या यह तथ्य पचाया जा सकता है? स्वाद क्या है? क्यों है? और, किस तरह अनुभव किया जाता है? स्वाद से जुड़ी कई गलत धारणाएँ इतनी आम हैं कि उन्हें स्कूली पाठ्यपुस्तकों में भी जगह मिल जाती है। इसलिए स्वाद और उस पर हुए अध्ययनों को समझना भी ज़रूरी बन जाता है। अर्पिता व्यास के इस लेख में जानिए स्वाद से जुड़ी कुछ नमकीन, कुछ खट्टी-मीठी, तो कुछ 'उमामी' जानकारियाँ।

16

भरहुत, मथुरा और अजन्ता

शिक्षा और स्कूल को आज हम जिस हद तक आपस में गुँथा हुआ देखते और मानते हैं, क्या ऐसा हमेशा से रहा है? इतिहास में, विशेषकर दक्षिण एशियाई इतिहास में, शिक्षण, शिक्षार्थी और शिक्षक के क्या मायने रहे हैं? यह जानना रोचक तो होगा ही, साथ ही, इसे उस दौर की कला के माध्यम से जानना तो और भी मज़ेदार होगा! सी.एन. सुब्रह्मण्यम् के इस लेख में भारत के तीन अलग-अलग स्थानों के शिल्पों का अध्ययन हमें आज के शिक्षण से जुड़े कई अहम सवालों का सामना करने की ओर ले जाता है। अभी भी कई सवाल अनुत्तरित हैं...

62

शैक्षणिक संदर्भ

अंक-97 (मूल अंक-154), सितम्बर-अक्टूबर 2024

इस अंक में

05 पक्षियों की मिमिक्री
संकेत राउत

16 स्वाद की पहचान
अर्पिता व्यास

21 हिरोशिमा के आँसू
हरिशंकर परसाई

27 भिन्न हैं ये खेल
अर्जुन सान्याल

32 एक सरकारी स्कूल में पर्यावरण शिक्षा...
दीप्ति अमीन

41 धरती के अन्दर, सूरज के पार
स्मिति

47 वो बचपन जो कुछ खास है
जगदीश यादव, आकाश मालवीय

53 पुस्तक, जो आपको सोचने को विवश करती है
अविजित पाठक

62 भरहुत, मथुरा और अजन्ता
सी.एन. सुब्रह्मण्यम्

75 जब पल्लवी बुआ सुल्ताना बनीं (विज्ञान कथा)
हरजिन्दर सिंह 'लाल्टू'

83 मधुमक्खी के छत्ते के प्रकोष्ठों का आकार षट्कोणीय...?
सवालीराम

आपने लिखा

संदर्भ अंक-151 (मार्च-अप्रैल) में प्रकाशित युवान एविस का लेख ‘क्या जैव विविधता राजनीति विज्ञान की शिक्षा...’ पढ़ा। राजनीति विज्ञान की आधुनिक अवधारणा जिसमें राज्य और सरकार का अध्ययन किया जाता है, में मानव के क्रियाकलापों और उसके सामाजिक व्यवहार के अध्ययन पर अधिक ज़ोर दिया गया है।

लेखक ने जैव विविधता तथा जंगल के जीवों के मानवीकरण का सुन्दर चित्रण किया है कि कैसे एक काले सिर वाला ओरियोल बैंगन के खेत में अपने बच्चों के प्रति अपने पारिवारिक दायित्वों को निभा रहा है। और जंगल में तितलियाँ, पेड़-पौधे और अन्य जीव अन्तर्जातीय सहयोग का प्रदर्शन कर रहे हैं। लेखक ने यह लेख एक सवाल से शुरू किया है और पूरे लेख में भारतीय समाज या मानव मन के अन्दर चलने वाली विभिन्न हीन भावनाओं जैसे छुआछूत, ऊँच-नीच, परायापन, अन्य लोगों और समूहों के प्रति असंवेदनशीलता आदि का उल्लेख किया है। इन सबके बीच में पूँजीवादी विचारधारा मानवीय व्यवहार को नियंत्रित करती है और अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए मानव मन में दुर्भावना के बीज बो रही है। लेखक द्वारा न केवल इस समस्या को उदाहरण देकर समझाया गया बल्कि निजी अनुभवों के आधार पर उनके समाधान देने की कोशिश भी की गई है। समाधान जो प्रकृति से निकटता बढ़ाने के रूप में हमें मिलता है।

व्यक्ति जैसे-जैसे प्रकृति के निकट आता है और जैव विविधता का अध्ययन करता है तो पाता है कि जंगल में रहने वाले कीड़ों से लेकर बड़े-बड़े वृक्ष, उन पर रहने वाले पक्षी, पानी के अन्दर रहने वाले जीवों से लेकर ज़मीन पर चलने वाले शाकाहारी-मांसाहारी या सर्वाहारी जीवों तक, सभी का जंगल के पारिस्थितिक तंत्र को बनाए रखने में अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान रहता है। यहाँ दीमक का भी उतना ही महत्व है जितना कि हाथी या चील का है।

मानव समाज में शिक्षा की यह विकृत विचारधारा है जो मानव को रंग, भाषा, लिंग, व्यवसाय व कर्म के आधार पर स्वयं को निम्न या श्रेष्ठ मानना सिखाती है। किन्तु मानव को यह समझना होगा कि समाज में काम के समस्त रूप महत्वपूर्ण हैं तथा किसी को भी अन्य का शोषण या भेदभाव करने का कोई अधिकार नहीं है।

देवेश शांडिल्य
प्रयोगशाला तकनीशियन
शासकीय नर्मदा महाविद्यालय
होशंगाबाद, म.प्र.

पक्षियों की मिमिक्री

संकेत राउत

मिमिक्री अनुकूलन का एक विशेष तरीका माना जाता है। इसमें जीव अपने परिवेश में मिलने वाली अन्य प्रजातियों के जीवों की नकल करते हैं। जीव जगत में नकल कई सारे रूपों में उभरकर आती है। नकल आवाज़ की भी हो सकती है और रंग-रूप की भी। नकल में काफी विविधता पाई जाती है। और तो और, सिर्फ पक्षी ही नहीं बल्कि तितलियाँ एवं पेड़-पौधे भी नकल कर लेते हैं। इस लेख में हम पक्षिओं की मिमिक्री से रूबरू होंगे जिसमें पक्षियों की कुछ प्रजातियाँ अन्य प्रजाति के पक्षियों के रंग-रूप को धारण करके, उनकी नकल करती हैं।

पक्षी मानव संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहे हैं। पाषाण युग के पक्षियों के भित्ति-चित्र इसकी गवाही देते हैं। मिस्त्र के पिरामिडों में पक्षियों की भी ममी पाई जाती हैं। भारतीय संस्कृति ने भी पक्षियों को कई देवी-देवताओं के वाहन होने का सम्मान दिया है। कुछ सदियों पहले तक, पक्षियों की आकाश में उड़ने की क्षमता मनुष्यों को अचम्भित करती थी। इसमें कोई शक नहीं कि मनुष्य को पक्षियों के निरीक्षण में हमेशा रुचि रही है। अरस्तु जैसे कई दार्शनिक पक्षियों के बारे में भी विचार प्रकट करते रहे हैं। दो-ढाई हज़ार साल पहले रोमन दार्शनिक और प्रकृतिवादी प्लिनी का यह मानना था कि कोयल सर्दियों में शिकारी पक्षी में बदल जाती है। क्या आपको यह बात अटपटी नहीं लगी? तो फिर प्लिनी जैसे दार्शनिक ने क्या देखकर यह अनुमान लगाया होगा? शायद प्लिनी ने बाज जैसी कोयल, या कोयल जैसा बाज देखा हो। लेकिन एक फलाहारी कोयल का मांसाहारी बाज की तरह दिखना कैसे सम्भव है? क्या आपने कभी बाज की तरह दिखने वाली कोयल देखी है? क्या प्लिनी ने दावे को बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया था? आइए, इस लेख में हम इस तरह के विचित्र अवलोकनों से समझने का प्रयास करते हैं।

पपीहा (common hawk cuckoo)

किसानों को बारिश के संकेत देने वाला पक्षी पपीहा दक्षिण एशिया और लगभग पूरे भारत में पाया जाता है। 'कुकू' शब्द से आप समझ पा रहे होंगे कि यह पक्षी कोयल प्रजाति का है। लेकिन इस पक्षी के नाम में हॉक

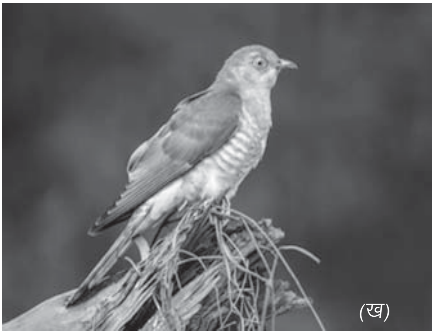

चित्र-1: *(क) शिकरा (ख) पपीहा*

(hawk) शब्द भी शामिल है। 'हॉक' शब्द शिकारी पक्षी, बाज के लिए इस्तेमाल किया जाता है। अब शिकारी पक्षी के नाम का प्रयोजन इस कोयल की पहचान के लिए क्यों किया गया होगा? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए ऊपर दिए गए पक्षियों के चित्र देखिए।

फोटो में दिखाया गया पहला पक्षी शिकरा है और दूसरा पक्षी पपीहा है। आप इन दोनों पक्षियों को ध्यान से देखिए। दोनों पक्षियों में रंग और पेट पर पैटर्न बहुत समान हैं। पहली बार देखने पर पपीहा बिलकुल शिकरा की तरह दिखता है। तो पक्षी सिर्फ आवाज़ की नकल नहीं उतारते बल्कि तितलियों की तरह अन्य पक्षियों के रंग और पैटर्न भी अपना लेते हैं। पपीहा आपके घर के आसपास पाए जाने वाले नकलची पक्षी का एक उदाहरण है। तो इस लेख के ज़रिए हम जानने की कोशिश करेंगे कि पक्षी जगत में रंग-रूप की नकल कैसे की जाती है।

शिकारी पक्षियों में, शिकरा जैसा धारीयों का पैटर्न कई अन्य प्रजातियों में भी देखा जाता है। वास्तव में, इस पैटर्न को शिकारी पक्षी का पहचान चिह्न भी माना जा सकता है। दूसरी ओर, पेट पर पपीहे जैसी धारियों का यह पैटर्न मादा कोयल (asian koel) और कई अन्य कोयल प्रजातियों में भी देख सकते हैं। हमें यह अन्दाज़ा ही नहीं होता कि नकल धोखा दे सकती है।

हमने *संदर्भ* में प्रकाशित पिछले लेखों में देखा है कि जीवन के संघर्ष में जीवों द्वारा नकल भी एक स्ट्रैटिजी के रूप में इस्तेमाल की जाती है। अब पक्षियों की इस धोखाधड़ी का

व्यवस्थित अध्ययन किया जा रहा है और कई शोधकर्ताओं ने इसके लिए कुछ विशिष्ट प्रयोग भी आज़माए हैं। आइए, अब कुछ उदाहरणों के ज़रिए जानते हैं कि नकल से इन पक्षियों को क्या फायदे हो सकते हैं।

नकल के लाभ

यह सर्वविदित है कि कोयल अपने अण्डे अन्य पक्षियों के घोंसले में देती हैं। जीवों में इस व्यवहार को ब्रूड परजीविता (brood parasitism) कहा जाता है। किसी दूसरे पक्षी के घोंसले तक पहुँचकर उसमें अण्डे देना, निश्चित रूप से आसान काम नहीं है। इस परिस्थिति में पक्षी हमला भी कर सकते हैं। पपीहा कुकू अण्डे देने के लिए ज़्यादातर सात भाई (Jungle Babbler) के घोंसले को चुनती है। सात भाई आक्रामक होते हैं और अक्सर छः से दस के गुट में पाए जाते हैं। ये आपस में मिलकर आसानी-से पपीहे पर हमला कर सकते हैं। इसके अलावा जिस घोंसले में अण्डे दिए जाने हैं, उसमें पहले से ही अण्डे होने चाहिए अन्यथा पपीहे की घुसपैठ पकड़ी जा सकती है। लेकिन जिस घोंसले में पहले से अण्डे होंगे, वहाँ सात भाई के जोड़े में से किसी एक पक्षी के होने की सम्भावना भी होगी, जिससे पपीहे द्वारा अण्डे देने का काम और भी मुश्किल हो जाएगा। और यहीं नकल काम में आ सकती है। कुछ प्रयोगों के माध्यम से, शोधकर्ताओं ने यह पाया कि सात भाई जैसे पक्षी पपीहे जैसे पक्षी के पेट पर धारियों के पैटर्न को देखकर, उसे शिकारी पक्षी मान सकते हैं। ऐसी स्थिति में सात भाई या अन्य पक्षियों के भाग निकलने की सम्भावना बढ़ जाती है जिससे पपीहे का काम आसान हो जाता है।

छुपने में सहायता

शिकारी पक्षियों के पेट पर मौजूद धारियों के पैटर्न की एक और खासियत यह है कि ये पैटर्न पेड़ों की पत्तियों की भीड़ में पक्षी को काफी हद तक अदृश्य बना देते हैं। इससे शिकारी पक्षियों को छुपकर अचानक हमला करने में मदद मिलती है। यही पैटर्न पपीहे द्वारा सम्भावित घोंसले की तलाश करते समय खुद को छुपाने में मदद कर सकता है। मादा एशियन कोयल के पेट पर भी धारियों का यह पैटर्न पाया जाता है जो सम्भवतः उसे छुपकर घोंसले की खोजबीन करने में मददगार साबित हो सकता है। फिर भी यह कार्य करते वक्त सतर्कता बरतना ज़रूरी है। नकल अगर पकड़ी गई तो मादा मुसीबत में पड़ सकती है। ऐसे में नर कोयल पक्षियों को गुमराह करने की कोशिश करता है। नर एशियन कोयल के पेट पर मादा की तरह धारियों का पैटर्न नहीं होता है। इस वजह से नकल का लाभ नर को नहीं मिल पाता और अक्सर अण्डेवाले

घोंसले के पक्षी हमला बोलकर उसे खदेड़ने के लिए पीछा भी करते हैं। और इस हड़बड़ी में मादा एशियन कोयल को दूसरे पक्षी के घोंसले में अण्डा देने का अवसर प्राप्त हो जाता है।

खाना या खानेवाला?

कोयल परिवार के पक्षी अक्सर शिकारी पक्षियों का भोजन भी बन जाते हैं, इसलिए कोयल का शिकारी पक्षियों के जैसा दिखने से उन पर हमला होने की सम्भावना कम हो जाती है। इस स्थिति में शिकारी पक्षी, कोयल को अन्य शिकारी पक्षी मानकर उस पर हमला नहीं करते। चूँकि यहाँ नकल द्वारा खुद को बचाने में मदद मिलती है, इसलिए यह प्रक्रिया protective mimicry के नाम से जानी जाती है।

खाना जुटाने में मदद

पक्षी नकल का उपयोग भोजन प्राप्त करने के लिए भी करते हैं। अन्य पक्षी जब शिकारियों के डर से भाग जाते हैं तब कोयल के लिए भोजन स्रोत पर कब्ज़ा करना आसान हो जाता है। इसका अध्ययन करने के लिए इंग्लैण्ड में शोधकर्ताओं ने कई बर्ड फीडर बनाए। बर्ड फीडर का उपयोग पक्षियों के लिए भोजन और पानी रखने के लिए किया जाता है। दो प्रजातियाँ जो उस क्षेत्र में फीडर्स पर आसानी-से पाई जा सकती हैं, वे हैं, ग्रेट टिट और ब्लू टिट। चूँकि कोयल का मुख्य आहार फल और कीड़े हैं, इसलिए ये टिट प्रजातियाँ स्पष्ट रूप से उनका लक्ष्य नहीं थीं।

शोधकर्ताओं ने इन फीडर्स के आसपास पहाड़ी कोयल (common cuckoo) के भूसे से भरे कुछ नमूने रखे और टिट प्रजाति की प्रतिक्रिया दर्ज़ की। साथ ही, बर्ड फीडर पर भूसे से भरे कबूतर प्रजाति के भी कुछ नमूने रखे गए थे। सामान्य मादा कोयल के पेट पर शिकारी पक्षियों के समान धारियों का पैटर्न होता है। शोधकर्ताओं ने उनमें से कुछ कबूतरों के पेट पर भी शिकारी पक्षी जैसी धारियों के पैटर्न बना दिए।

इस प्रयोग में पाया गया कि जब तक सामान्य कोयल के नमूनों के पेट पर धारियों का पैटर्न था, तब तक टिट असहज थे। लेकिन वे कबूतर या धारियों वाले कबूतरों से नहीं डर रहे थे। जब कोयल के पेट पर से धारियाँ हटा दी गईं, तो टिट ने कबूतर की तरह उन्हें भी नज़रअन्दाज कर दिया। इसका मतलब है कि पक्षी सिर्फ धारियों के पैटर्न से शिकारी पक्षी की पहचान नहीं करते। यदि ऐसा होता तो वे धारियों वाले कबूतरों से भी डर जाते। तो इससे समझ में आता है कि शिकारी पक्षी की पहचान के लिए अन्य चिह्न और संकेत भी हो सकते हैं। अगर पपीहे की बात करें तो पहली बार देखने पर वह किसी शिकारी पक्षी की तरह दिखता है।

उड़ते समय भी वह किसी शिकारी की तरह उड़ता है और बैठने पर बाज की ही तरह अपनी पूँछ को एक से दूसरी तरफ हिलाता है। इसलिए अन्य पक्षी और छोटे जानवर भी पपीहे के दिखावे से भ्रमित हो जाते हैं और भय से शोर मचाने लगते हैं। अब, कबूतर न तो आकार में शिकारी पक्षी की तरह होते हैं और उनके उड़ने का तरीका भी अलग होता है। तो पेट पर धारियाँ होना ही काफी नहीं है, बल्कि शायद पक्षी का आकार भी शिकारी पक्षी जैसा होना ज़रूरी है।

अब कल्पना करें कि कोयल के शरीर पर एक शिकारी पक्षी का पैटर्न है, लेकिन यह उस पक्षी का है जो उस कोयल के भौगोलिक क्षेत्र से सम्बन्धित नहीं है। आपको क्या लगता है, इस नकल पर अन्य जीवों की क्या प्रतिक्रिया होगी? क्या वे ऐसी कोयल को शिकारी पक्षी मानेंगे? नहीं। चूँकि जीव केवल अपनी भौगोलिक सीमा के भीतर की प्रजातियों को ही पहचानते हैं, इसलिए नकल करने वाले पक्षियों को स्थानीय पक्षियों के रंग, रूप और आदतों को अपनाने की आवश्यकता होती है।

नकल किस-किस की?

क्या नकल सिर्फ शिकारी पक्षियों की होती है? कोयल परिवार के पक्षी सिर्फ शिकारी पक्षियों की ही नकल नहीं करते। कोतवाल (drongo) एक आक्रामक पक्षी है और अपने आकार से कई गुना बड़े पक्षियों पर भी हमला करने से नहीं हिचकिचाता। बड़े शिकारी पक्षी भी कोतवाल के रास्ते में नहीं आते। कोयल वर्ग की प्रजातियाँ फोर्क टेल्ड (fork tailed) ड्रोंगो कुकू और स्कवेर टेल्ड (square-tailed) ड्रोंगो कुकू कोतवाल की नकल करती हैं। कोतवाल की आक्रामकता जानने वाले पक्षी उसकी नकल करने वाले पक्षियों से भी ज़रूर दूर रहना चाहेंगे। कोतवाल जैसे आक्रामक पक्षी की नकल निश्चित रूप से भोजन स्रोत प्राप्त करने और अन्य मेज़बान पक्षियों को डराकर, उनके घोंसलों में अण्डे देने में मददगार साबित हो सकती है।

अन्य नकलची पक्षियों के उदाहरण

गौरैया (house sparrow) और बया (baya weaver) फिंच परिवार में शुमार हैं। इस परिवार की एक प्रजाति कुकू फिंच (cuckoo finch) अफ्रीका महाद्वीप में पाई जाती है। ये फिंच परिवार की एक ब्रूड परजीवी प्रजाति है। शायद इसीलिए उनके नाम में cuckoo शब्द आया है। इस पक्षी की मादा सदर्न रेड बिशप (*Euplectes orix*) प्रजाति की मादा की नकल करती है। लेकिन कोयल जो शिकरा और कोतवाल जैसे आक्रामक पक्षियों की नकल करती है, उससे विपरीत कुकू फिंच जिस प्रजाति की मादा की नकल करती है, वह प्रजाति भी फिंच परिवार का ही पक्षी है।

चित्र-2: *(क) कोतवाल (ख) फोर्क टेल्ड ड्रोंगो कुकू (ग) स्कवेर टेल्ड ड्रोंगो कुकू*

घने पेड़ों में रहने वाली कोयल प्रजाति से अलग फिंच परिवार के पक्षी घास के खुले मैदानों में रहते हैं। यहाँ छुपने की सम्भावना बहुत कम होती है, जहाँ हर कोई, हर किसी को देख सकता है। जब शिकारी आसपास होते हैं तो पक्षी बहुत सतर्क रहते हैं। ऐसी स्थिति में वे इस तरह का व्यवहार नहीं करते जिससे किसी शिकारी को उनके घोंसले की आसानी-से भनक लग जाए। कोयल खुद को पेड़ की पत्तियों में छुपा सकती है लेकिन यह सुविधा घास के खुले मैदानों में रहने वाले कुकू फिंच के लिए उपलब्ध नहीं होती। घास के मैदान में सदर्न रेड बिशप से खतरा

न होने के कारण, मादा कुकू फिंच उसके वेश में अपनी मेज़बान प्रजाति को चुपचाप देख सकती है। मुझे लगता है कि यह इस बात का सुन्दर उदाहरण है कि अधिवास (habitat) बदलने पर नकलची कैसे बदल सकते हैं।

गौर कीजिए कि अब तक इस लेख में दिए हुए नकलची पक्षियों के सारे उदाहरण ब्रूड परजीवी प्रजातियों के थे। तो क्या ब्रूड परजीवी प्रजातियों के अलावा अन्य पक्षी प्रजातियों में भी नकल के उदाहरण मिलते हैं? चलो देखते हैं।

मादा, नर के रूप में

पक्षियों की अधिकांश प्रजातियों में नर और मादा आकार और रंग में बहुत भिन्न होते हैं। चूँकि चूज़ों के पालन-पोषण में मादा की भूमिका अधिक होती है, इसलिए उसके रंग आम तौर पर फीके होते हैं जो उन्हें छिपने में मदद करते हैं। जबकि नर का काम मादा को आकर्षित करने का होता है, इसलिए उसके रंग आकर्षक और रंगीन होते हैं। इसे लैंगिक द्विरूपता कहा जाता है।

दुनिया का सबसे छोटा पक्षी हमिंगबर्ड भी एक लैंगिक द्विरूपी प्रजाति है। अमेरिका में मिलने वाले white-necked jacobin hummingbird के वयस्क नर चमकदार नीले-सफेद रंग के होते हैं, जबकि अधिकांश मादाएँ हल्के हरे रंग की होती हैं। दिलचस्प बात यह है कि इस प्रजाति की लगभग 20% वयस्क मादाएँ नर के नीले-सफेद रंग की नकल करती हैं। लेकिन उनकी ताकत और व्यवहार अन्य मादाओं जैसी ही होती हैं। इस प्रकार की नकल को भ्रामक नकल (deceptive mimicry) कहा जाता है।

हालाँकि, नर जैसे चमकीले रंग होने से शिकारियों की नज़र में आने का खतरा बेशक बढ़ सकता है, फिर भी हर पाँच में से एक मादा नर की नकल क्यों करती होगी? इन सवालों के जवाब खोजने के लिए, शोधकर्ताओं ने बर्ड फीडर्स पर इस प्रजाति के व्यवहार का अवलोकन किया। अध्ययन से पता चला कि ये हमिंगबर्ड खुद की प्रजाति पर भी हमला करती हैं और उन्हें बर्ड फीडर्स से भगाने की कोशिश करती हैं। इसमें मादा पक्षी अधिक प्रभावित होती हैं। मादाएँ नर के हमलों का सामना करने में असमर्थ होती हैं इसलिए उड़ जाती हैं। इसके विपरीत, नर हमले का प्रतिकार करने के लिए पलटवार करते हैं। यह पलटवार नर हमिंगबर्ड को दूसरे नर हमिंगबर्ड पर हमला करने से रोकता है। बेशक, मादा पक्षी को इस स्थिति में नकल का फायदा मिलता है। इसलिए यह देखा गया है कि इस तरह की नकल मादाओं को भोजन प्राप्त करने में मदद करती है। सीधे शब्दों में कहें तो इस प्रजाति के नर मादाओं की तुलना में अधिक शक्तिशाली और दबंग होते हैं। यहाँ

मादाएँ नर का भेष धारण कर यह दिखावा करती हैं कि वे भी गैंगस्टर हैं और नर को धोखा देकर भोजन प्राप्त करती हैं।

फीमेल-मिमिक्री

शिकारी पक्षी भी लैंगिक रूप से द्विवर्णी यानी द्विरूपी होते हैं। इन प्रजातियों में नर का प्रारम्भिक रूप मादा जैसा ही होता है। मादा के समान, फीके रंग अनुभवहीन नर को वयस्कता तक पहुँचने से पहले शिकारियों से छुपने में मदद करते हैं। उन्हें वयस्क नरों की आक्रामकता या प्रतिस्पर्धा का सामना भी नहीं करना पड़ता। इसे फीमेल-मिमिक्री अवधारणा (female-mimicry hypothesis, FMH) कहा जाता है। शिकारी पक्षियों के कुछ युवा नर, जैसे कि यूरोपीय केस्ट्रेल *(फेल्को टिननक्युलस)*, वयस्क नर को छकाकर मादा के साथ सम्भोग करने के लिए, इस मादा भेष का फायदा उठाते हैं।

(क)

(ख)

(ग)

चित्र-3: *(क) मादा यूरोपीय केस्ट्रेल (ख) वयस्क नर यूरोपीय केस्ट्रेल (ग) युवा नर यूरोपीय केस्ट्रेल*

कैसे प्राप्त होते हैं नकलची को घातक जीवों के रूप?

उत्क्रान्ती में उत्परिवर्तन (mutation) की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। हम यह कह सकते हैं कि नकल का विकास भी उत्परिवर्तन द्वारा शुरू होता है। इस उत्परिवर्तन से नकल करने वाले जीव को किसी अन्य जीव की विशेषता (रंग-रूप) प्राप्त होती है। उदाहरण के तौर पर हम शिकारी पक्षियों पर दिखने वाले धारियों के पैटर्न को ले सकते हैं। यह पैटर्न जब नकलची जीव पर होते हैं तो उन्हें इसका फायदा मिलता है। इस पैटर्न की वजह से नकलची जीव पर शिकारियों द्वारा हमले की सम्भावना कम हो जाती है। इससे नकलची जीवों की संख्या प्रजाति में बढ़ जाएगी और उन्हें अपना वंश आगे बढ़ाने के ज़्यादा मौके प्राप्त होंगे।

इस तरह नकलची पक्षी का यह उत्परिवर्तन भी उस प्रजाति में बढ़ जाएगा। तो कुल मिलाकर यह प्रक्रिया नैसर्गिक चयन की है। खैर, नकल पर अभी बहुत-सी खोजबीन होना ज़रूरी है।

वास्तव में, यूरोपीय केस्ट्रेल के वयस्क नर, मादा रूपी युवा नर पक्षी की पहचान कर लेते हैं, लेकिन उन पर हमला करने में दिलचस्पी नहीं रखते, क्योंकि वे उनके नीरस रंग के कारण उन्हें कम तबके का मानते हैं। यहाँ तक कि जब मादा करीब होती है, तब भी वयस्क नर उन्हें नज़रअन्दाज़ कर देते हैं। इसलिए जब सही समय होता है, तो मादा के भेष में ये युवा नर, वयस्क नर को चकमा देकर मादा के साथ सम्भोग करने के अवसर का फायदा उठाते हुए दिखाई देते हैं। एक अध्ययन से यह भी पता चला है कि यूरोपीय केस्ट्रेल प्रजाति में, वयस्क मादा और युवा नर के बीच सम्भोग अधिक सफल होता है।

कुछ पक्षी प्रजातियों के नर पहली बार सम्भोग करने के बाद वयस्क रूप धारण करते हैं। इस बर्ताव को delayed plumage maturation कहा जाता है। लेकिन मार्श हैरियर शिकारी पक्षियों की एक अद्भुत प्रजाति है। इस प्रजाति के लगभग 40% नर वयस्क होने पर भी मादा के भेष में ही रहते हैं। जीवों में इस व्यवहार को बहुरूपता (polymorphism) कहा जाता है। हालाँकि, सरीसृपों और मछलियों में भी इस तरह की नकल के उदाहरण पाए जाते हैं, लेकिन पक्षियों में ऐसी नकल के उदाहरण अब तक केवल दो प्रजातियों में ही सामने आए हैं।

इसका दूसरा उदाहरण है, रफ *(फिलोमेकस पुगनेक्स)*। प्रत्येक शिकारी पक्षी का इलाका होता है और प्रतिस्पर्धी नर को आक्रामक तरीके से

चित्र-4: बाईं ओर मादा डाउनी वुडपैकर और दाईं ओर आक्रामक हेयरी वुडपैकर।

इलाके से खदेड़ा जाता है। मादा का भेष धारण किए हुए नर को अक्सर मादा समझने की भूल हो जाती है और उन्हें अनदेखा कर दिया जाता है। इससे उन्हें खाद्य संसाधनों पर कब्ज़ा करने का मौका मिलता है। मादा रूप में नर रफ भी मादा के साथ सम्भोग करने के लिए वयस्क नर को चकमा देकर अपने रूप का लाभ उठाते हैं।

कठफोड़वा की एक-जैसी प्रजातियाँ

पक्षी जगत में नकल का एक और उदाहरण कठफोड़वा प्रजाति में देखा जा सकता है। कठफोड़वा की कुछ प्रजातियाँ अपने क्षेत्र की अन्य कठफोड़वा प्रजातियों से मिलती-जुलती हैं, और इसे दुनियाभर में देखा जा सकता है। यह पता चला है कि एक ही क्षेत्र में रहने वाले कठफोड़वा की आनुवंशिक रूप से दूर की प्रजातियाँ भी समान दिखती हैं। उदाहरण के लिए, उत्तरी अमेरिका का डाउनी वुडपैकर बड़े और अधिक आक्रामक हेयरी वुडपैकर जैसा दिखता है। यह चीज़ अन्य पक्षियों को डाउनी वुडपैकर के आसपास भटकने से रोकती है और खाद्य संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा को कम करती है। भारत में भी कठफोड़वा

प्रजाति के ऐसे कुछ उदाहरण उपलब्ध हैं। लेकिन चूँकि कुछ अध्ययनों से पता चलता है कि कठफोड़वा परिवार की प्रजातियों का एक-जैसा दिखाई देने का सम्बन्ध उनके भौगोलिक क्षेत्र से है, इसलिए इस पर और शोध निश्चित रूप से आवश्यक है कि ये सब मिमिक्री के उदाहरण हैं भी कि नहीं।

जीवन वास्तव में बहुत अद्‌भूत है। ज़िन्दगी जितनी खूबसूरत है, उतनी ही रहस्यमयी भी। शोधकर्ता अपने-अपने तरीके से इस रहस्य को सुलझाने की कोशिश करते हैं। मिमिक्री एक ऐसा ही रहस्य है। एक स्वाभाविक सवाल उठता है कि क्या तितली और पक्षी के अलावा भी जीव जगत में नकल की गुंजाइश कहीं रहती है? देखते हैं, अगले लेख में।

संकेत राउत: वन्यजीव प्रेमी हैं तथा वन्यजीव अध्ययनों में भाग लेते रहते हैं। पक्षी और तितलियाँ रुचि के मुख्य क्षेत्र हैं। जंगली जानवरों के बारे में पढ़ने में और उनके व्यवहार का विश्लेषण करने में आनन्द आता है। शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत हैं और शिक्षक प्रशिक्षण का कार्य करते हैं।

सन्दर्भ:

1. https://royalsocietypublishing.org/doi/10.1098/rspb.2015.0795
2. Adaptive significance of permanent female mimicry in a bird of prey: Audrey Sternalski, Francois Mougeot and Vincent Bretagnolle
3. https://www.cam.ac.uk/research/news/cuckoos-impersonate-hawks-by-matching-their-outfits
4. https://www.psychologytoday.com/intl/blog/lies-and-deception/202311/mulan-mimicry
5. https://intobirds.com/study-finds-some-woodpeckers-imitate-a-neighbors-plumage/
6. Delayed maturation in plumage colour: Evidence for the female-mimicry hypothesis in the kestrel: Harri Hakkarainen, Erkki Korpimäki, Esa Huhta & Päivi Palokangas

पपीहा

स्वाद की पहचान

पाठ्यपुस्तकों में गलत धारणा को बढ़ावा

अर्पिता व्यास

जोएन सिलबर्नर के लेख का रूपान्तरण

विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में 'प्राणियों में पोषण' अध्याय के तहत अक्सर इन्सानी जीभ के बारे में पढ़ाया जाता है। आम तौर पर पाठ्यपुस्तकें बताती हैं – जीभ एक मांसल पेशीय अंग है, जो पीछे की ओर मुख-गुहा के अधर तल से जुड़ी होती है। इसका अग्र-भाग स्वतन्त्र होता है और किसी भी दिशा में मुड़ सकता है। हम बोलने के लिए भी जीभ का उपयोग करते हैं। इसके अलावा जीभ भोजन में लार को मिलाने का कार्य करती है और निगलने में भी सहायता करती है। स्वाद का पता भी हमें जीभ द्वारा ही चलता है। दरअसल, जीभ पर स्वाद कलिकाएँ होती हैं, जिनकी सहायता से हम विविध स्वादों को महसूस कर पाते हैं।

कुछ पाठ्यपुस्तकों में जीभ पर विविध स्वाद कलिकाओं की स्थिति (लोकेशन) पता करने सम्बन्धी गतिविधि दी होती हैं। स्वाद का पता चलना एक काफी जटिल प्रक्रिया है। यह केवल जीभ तक सीमित नहीं है बल्कि इसमें शरीर के कुछ और अंग भी शामिल होते हैं।

जीभ हमेशा से हमारी एक महत्वपूर्ण इन्द्री रही है जिसके मार्फत हमें कई खाद्य पदार्थों का स्वाद पता चलता है। जैव-विकास के लिहाज़ से देखें तो जीवों में स्वाद खाए हुए पदार्थ की पोषकता या नुकसानदायक होने का एहसास करवाता है।

पाठ्यपुस्तकों में जीभ का चित्रण

विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में कई बरसों से जीभ पर स्वाद कलिकाओं और स्वाद-विशेष को दर्शाने वाला चित्र उपयोग किया जा रहा है। इसे बोलचाल में जीभ का नक्शा या टंग मैप भी कहते हैं। इसे सन् 1901 में जर्मन वैज्ञानिक डेविड हेनिग ने जीभ की स्वाद कलिकाओं के एक अध्ययन के दौरान बनाया था। याददाश्त पर थोड़ा ज़ोर डालेंगे तो आपको जीभ का वह चित्र याद आ जाएगा जिसमें जीभ को स्वाद के अनुसार चार क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। उसमें जीभ के अगले सिरे के आसपास मीठा, दोनों बाजुओं में नमकीन, उसके थोड़ा पीछे दोनों ओर खट्टा और एकदम पीछे की तरफ कड़वा स्वाद दिखाया जाता है। हम अपने

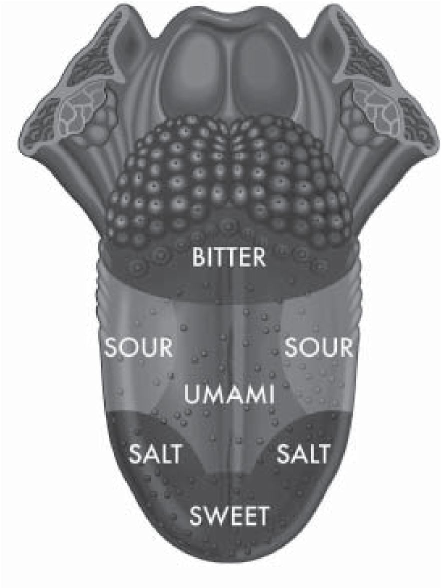

चित्र-1: स्वाद कलिका आरेख, जिसका उपयोग कई वर्षों से कई पाठ्यपुस्तकों में किया जाता रहा है, 1901 के एक अध्ययन के दौरान बनाया गया था। यह जीभ के विभिन्न क्षेत्रों की संवेदनशीलता को दर्शा रहा है जिसमें जीभ को स्वाद के अनुसार चार क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। बीसवीं सदी के आरम्भ में जापानी वैज्ञानिक किकुने इकेदा का कहना था कि एक पाँचवाँ स्वाद भी होता है जिसे उन्होंने उमामी (Umami) नाम दिया था।

सामान्य अनुभव से भी जानते हैं कि जीभ के किसी भी हिस्से पर खाने की चीज़ रखने से हमें उसका स्वाद पता चल जाता है। तब यह चित्र क्या दर्शाता है? यह चित्र बताता है कि जीभ के किस क्षेत्र में कौन-सी स्वाद कलिकाओं की संख्या ज़्यादा है।

अब जहाँ मीठा क्षेत्र दिख रहा है, वहाँ मीठे की स्वाद कलिकाएँ तो ज़्यादा हैं लेकिन अन्य स्वाद कलिकाएँ भी मौजूद होती हैं। यह भी स्पष्ट है कि मीठे स्वाद की कलिका हमें मीठे स्वाद की अनुभूति देती है और कड़वे स्वाद की कलिका कड़वा। एक ही स्वाद कलिका दोनों स्वाद की पहचान नहीं करती। इसके अलावा स्वाद कलिकाएँ मुँह में जीभ के अलावा तालू और गले की तरफ के हिस्सों में भी पाई जाती हैं।

मोनेल रासायनिक संवेदना केन्द्र (फिलाडेलफिया) में कार्यरत डॉक्टर पॉल ब्रेसलिन और उनके साथियों का कहना है कि हेनिग ने कभी भी यह नहीं कहा था कि अलग-अलग स्वाद की संवेदना जीभ के अलग-अलग क्षेत्रों में ही सीमित है। वे तो जीभ के अलग-अलग हिस्सों की स्वाद संवेदना के मापन में जुटे हुए थे। उनका मानना था कि जीभ पर किसी क्षेत्र में किसी स्वाद-विशेष को कम सान्द्रता पर पहचाना जा सकता है जबकि अन्य क्षेत्रों पर उसी स्वाद की अधिक सान्द्रता ज़रूरी होगी। उदाहरण के लिए, जीभ के सिरे पर मीठे के ग्राही (रिसेप्टर) अधिक होंगे लेकिन साथ ही, वहाँ पर अन्य स्वादों के ग्राही भी मौजूद रहेंगे।

स्वाद ग्राही जीभ तक सीमित नहीं

गलतफहमी यहीं तक सीमित नहीं है। ब्रेसलिन ने यह भी बताया है कि स्वाद को पहचानने की प्रक्रिया केवल

स्वाद

स्वाद रसायनतंत्रकीय ग्राहियों से सम्बधित है जिन्हें स्वाद कलिकाएँ कहते हैं। इनमें दो तरह की कोशिकाएँ होती हैं, स्वाद ग्राही कोशिकाएँ (TRCs) और स्वाद को समझने वाली कोशिकाएँ। TRCs में बहुत छोटे माइक्रो विलाई जिन्हें गस्टटोरी हेयर कहते हैं, पाए जाते हैं। TRCs का आगे का सिरा सीधे मस्तिष्क में कॉर्डा टीम्पेनी की फेशियल नर्व CV VII से जुड़ा होता है। दूसरी ओर से TRCs का सिरा CV IX ग्लॉसोफेरेंजियल नर्व से जुड़ा होता है। जब खाद्य पदार्थ लार के साथ मिलकर स्वाद कलिकाओं तक आता है तब यहाँ गस्टटोरी हेयर में स्वाद के लिए पाए जाने वाले छिद्रों में पहुँचता है। इसमें उपस्थित एपिकल चैनल नमकीन और खट्‌टे स्वाद की पहचान करते हैं। कड़वा, मीठा और उमामी स्वाद की पहचान G^- प्रोटीन से जुड़े ग्राही (GPRs) करते हैं। खट्‌टा स्वाद हमें अम्ल में उपस्थित H^+ से, कड़वा एल्कलॉइड से, नमकीन Na^+ से और उमामी ग्लूटामेट और L अमीनो अम्ल की वजह से पता चलता है।

जीभ तक सीमित नहीं है। न्यू इंग्लैंड जर्नल ऑफ मेडिसिन में प्रकाशित शोध पत्र में वे कहते हैं कि स्वाद पहचानने की प्रक्रिया सबसे पहले यकीनन जीभ से शुरू होती है। स्वाद कलिकाएँ पोषक तत्वों और विषैले पदार्थों को पहचानती हैं और स्वाद कोशिकाएँ यह सूचना मस्तिष्क को प्रेषित करती हैं।

ड्यूक विश्वविद्यालय के डियागो बोहोरक्वेज़ (बोहोरक्वेज़ स्वयं को आहारनाल-मस्तिष्क तन्त्रिका वैज्ञानिक मानते हैं) के अनुसार इस तरह के स्वाद ग्राही केवल जीभ तक सीमित नहीं रहते। ये आहारनाल में, यकृत में, अग्न्याशय में, वसा कोशिकाओं में, मस्तिष्क में, थायरॉइड और फेफड़ों में भी पाए जाते हैं। स्वाद के बारे में सोचते हुए हमें कभी भी इन अंगों की याद नहीं आती। उदाहरण के लिए, जब आहारनाल में शर्करा को तोड़ा जाता है तो यह मस्तिष्क को संकेत भेजता है कि वह अन्य अंगों को शर्करा का पाचन करने के लिए तैयार करे।

यानी स्वाद सम्बन्धी सन्देश मिलने पर मस्तिष्क पाचन की तैयारी करवाता है - आमाशय को सक्रिय करता है, लार स्त्रावित करवाता है, खून में थोड़ा इन्सुलिन भिजवाता है ताकि शर्करा अणुओं को कोशिकाओं तक पहुँचाया जा सके। गौरतलब है कि उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में रूसी कार्यिकीविद (physiologist) इवान पावलोव ने प्रयोगों के माध्यम से दिखाया था कि यदि मांस के टुकड़े

गतिविधि - जीभ पर विविध स्वाद कलिकाओं को पहचानना

इस गतिविधि के लिए सबसे पहले चीनी, नमक, नींबू रस, नीम की पत्तियों के रस या करेले के रस के विलयन बनाकर अलग-अलग कटोरियों में रख लें। हरेक कटोरी में एक-एक तीली या दाँत कुरेदनी रखिए।

अब कक्षा में अपने किसी साथी की आँखों पर कपड़ा बाँधकर उसे जीभ बाहर निकालने के लिए कहिए। यथासम्भव जीभ को सीधा रखना है। जीभ के विभिन्न हिस्सों पर तीली की मदद से किसी एक विलियन की एक-दो बून्द हौले-से रखिए।

साथी से पूछते रहें कि उसे जीभ के किस हिस्से पर मीठा, नमकीन, खट्टा या कड़वा स्वाद महसूस हो रहा है। साथी इशारे से 'हाँ' या 'ना' बता सकता है। कक्षा का एक अन्य विद्यार्थी कॉपी पर जीभ का चित्र बनाकर, उस पर नोट करता जाए कि साथी को जीभ के किस हिस्से पर कौन-से स्वाद की अनुभूति हुई। ध्यान रखना है कि हर बार एक विलयन का इस्तेमाल करने के बाद अच्छे से कुल्ला करना है और उसके बाद ही दूसरा विलयन जीभ पर छुआना है।

अन्त में, जीभ के चित्र पर इसे दर्शाकर सभी को दिखाइए और इस गतिविधि को किसी अन्य साथी के साथ दोहराइए।

इस गतिविधि को दोहराने या तिहराने के साथ-साथ महत्वपूर्ण बात यह है कि शिक्षक को बच्चों के साथ इन अवलोकनों एवं जीभ के नक्शे पर चर्चा करनी चाहिए। इस चर्चा में ही इस बात पर विचार हो सकता है कि इन्सान को किसी वस्तु का स्वाद किस तरह पता चलता है। क्या कोई खाद्य पदार्थ (उदाहरणार्थ - खीर, सूप, पाया, आइसक्रीम) के गरम या ठण्डा होने से हमारी जीभ पर उसका स्वाद कुछ फर्क महसूस होता है? क्या ऐसे भी कोई खाद्य पदार्थ हैं जिनका स्वाद मीठा-नमकीन-खट्टा-कड़वा, इनमें से कोई भी नहीं हो (जैसे घी)? ऐसे पदार्थों की भी सूची बना लेनी चाहिए। इन्हें जीभ के किसी विशेष हिस्से पर सबसे ज़्यादा महसूस किया जाता है या पूरे मुँह की मदद से स्वाद को महसूस करते हैं? इस तरह की चर्चाएँ खाद्य पदार्थ, स्वाद, ज़ायका जैसी कई बातों पर विस्तार में जाने का मौका देंगी।

कुत्ते के आमाशय में सीधे डाल दिए जाएँ तो उनका पाचन शुरू नहीं होता। पाचन तभी शुरू होता है जब मांस का थोड़ा-सा चूरा कुत्ते की जीभ पर डाला जाए। पाचन सम्बन्धी प्रयोगों के लिए पावलोव को सन् 1904 में

नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

डॉक्टर बोहोरक्वेज़ दो दशक पहले देख चुके थे कि बेरिएट्रिक सर्जरी के बाद उनके दोस्त को कतिपय चीज़ें (जैसे हाफ फ्राइड अण्डा) खाने में बिलकुल भी परेशानी नहीं हो रही थी जिसके स्वाद से वे पहले नफरत करती थीं। बेरिएट्रिक सर्जरी में अत्यधिक मोटापे से निजात पाने के लिए आमाशय या आहार नाल को काटकर छोटा कर दिया जाता है। परिणामस्वरूप शायद छोटी हो गई आहारनाल को लगता होगा कि पर्याप्त पोषण नहीं मिल रहा, इसलिए वहाँ पाई जाने वाली स्वाद कोशिकाएँ (न्यूरॉपोड) दिमाग को यह संकेत भेजती होंगी। प्रयोगशाला में देखा गया कि ये ग्राही तंत्रिका कोशिकाओं से सीधा सम्पर्क बनाकर दिमाग को सूचित करती हैं कि आहारनाल में कौन-से पोषक तत्व मौजूद हैं। इस तरह पूरे शरीर में जीभ के अलावा अन्य अंग भी स्वाद पहचान में मदद करते हैं।

हालाँकि, नए अध्ययनों से मामला और उलझता जा रहा है। वैसे तो बीसवीं सदी के आरम्भ में ही जापानी वैज्ञानिक किकुने इकेदा ने सुझाव दिया था कि एक पाँचवाँ स्वाद भी होता है जिसे उन्होंने उमामी (Umami) नाम दिया था। 1980 व 1990 के दशक में शोधकर्ताओं ने उमामी को स्वीकार किया था। यह स्वाद फिश सॉस और केचप में पाया जाता है। इसी प्रकार से कई शोधकर्ताओं का सुझाव है कि वसा के लिए भी विशेष ग्राही होते हैं। वसा को छठवें स्वाद के रूप में प्रस्तावित किया जा रहा है जिसे ऑलिओगस्टस कहा जाता है। इस विषय में शोध अभी भी जारी है।

अर्पिता व्यास: *एकलव्य* की विज्ञान टीम के साथ काम किया। विज्ञान पढ़ाने और सीखने में रुचि रखती हैं।

यह लेख न्यू यॉर्क टाइम्स, 29 मई, 2024 में प्रकाशित लेख The Textbooks Were Wrong About How Your Tongue Works पर आधारित है।

स्वाद से सम्बन्धित एक और लेख (स्वाद में क्या रक्खा है - स्निग्धा दास) पढ़िए *संदर्भ* अंक-67 (जनवरी-फरवरी, 2010) में।

हिरोशिमा के आँसू

हरिशंकर परसाई
(जन्मशती वर्ष)

चित्र-1: हिरोशिमा की सदाको सासाकी द्वारा बनाए गए कागज़ के सारस। हिरोशिमा पर जब एटम बम गिराया गया था, तब सदाको केवल दो साल की थी। बारह साल की उम्र में, उस हमले के असर के रूप में हुए कैंसर के कारण उसकी मौत हो गई। अपनी पीड़ा से जंग लड़ते हुए, सदाको ने ऐसे एक हज़ार कागज़ के सारस बनाने की कोशिश की थी – इस उम्मीद में कि वह जी सके।

सैनिक ने बटन दबाया और एक बड़े ज़ोर का धड़ाका हुआ। उस धड़ाके के साथ ही मनुष्य, पशु-पक्षी – सब मृत! जापान का वह पूरा भाग ही नष्ट-विनष्ट हो गया। यह हिरोशिमा था। हिरोशिमा पर जिसके द्वारा तबाही मचाई गई थी, धन-जन को बिलकुल बरबाद कर दिया गया था, वह थी अणु शक्ति[1]। और उस अणु शक्ति से जो बम तैयार किया गया था, वह था 'एटम बम'।

एटम की शक्ति अपार है। निर्माणकारी भी, और विनाशकारी भी। कुछ दशकों पहले तक की वैज्ञानिक

[1] *सम्पादकीय टिप्पणी: जिस दौर (1964) में यह लेख प्रकाशित किया गया था, उस समय बोलचाल की हिन्दी भाषा में, ऊर्जा के सन्दर्भ में, 'नाभिकीय' व 'परमाणु' के लिए 'अणु' शब्द का प्रयोग आम था। हालाँकि, आज भी कई जगह परमाणु बम व नाभिकीय बम 'अणु बम' के नाम से जाने जाते हैं। सो सटीक रूप से देखा जाए तो हिरोशिमा को तबाह करने वाली वह शक्ति दरअसल 'परमाणु शक्ति'/'नाभिकीय शक्ति' थी। अतः इस लेख में प्रयुक्त 'अणु' शब्द का आशय 'परमाणु' ही है।*

समझ के अनुसार, किसी तत्व को यदि सूक्ष्म-से-सूक्ष्म खण्डों में विभाजित कर लिया जाए, तो सबसे छोटा खण्ड 'अणु' कहलाएगा। हालाँकि उसके बाद, वैज्ञानिकों ने देखा कि अणु को भी अनेक खण्डों में तोड़ा जा सकता है। उन्होंने पाया कि अणु भी बहुत-से कणों से मिलकर बना होता है, जिन्हें इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन के नाम से जाना गया (न्यूट्रॉन की खोज कुछ दशकों बाद, 1932 में, हुई थी)। ये कण विद्युतचुम्बकीय बल के ज़रिए आपस में बँधे रहते हैं। यदि इन कणों को अलग-अलग कर दिया जाए तो इस प्रक्रिया के उपयोग से अपार शक्ति फैल सकती है। इसे सबसे पहले, 1905 में, आइंस्टाइन ने अपने $E = mc^2$ के समीकरण के ज़रिए सैद्धान्तिक रूप से सिद्ध किया था। उसके पश्चात् तो दुनियाभर के वैज्ञानिक अणु को तोड़ने के प्रयोगों में जुट गए।

परमाणु तोड़ो, ऊर्जा बटोरो

कई वैज्ञानिक सोच रहे थे कि अगर अणु को तोड़ने का फॉर्मूला मिल जाए, तो उससे निकली शक्ति का उपयोग जन-जीवन की भलाई के लिए हो पाएगा। वहीं दुनियाभर के सैनिक सोच रहे थे कि अणु को तोड़ने की विधि मिल जाए, फिर तो अन्य देशों की पराजय ही पराजय निश्चित है - ये दौर था, दूसरे विश्व-युद्ध का। इसलिए बहुत-से देश इसकी खोज में लग गए। आखिरकार जर्मनी ने सबसे पहले अणु को तोड़ने की विधि खोज निकाली। जल्द ही, इंग्लैंड और अमेरिका ने भी इस विधि की खोज कर ली। अब इन देशों में इस शक्ति का उपयोग कर पाने की होड़ मच गई। अन्ततः, अमेरिका में यह प्रयोग सफल हुआ। अमेरिका के वैज्ञानिकों ने अणु-शक्ति के दोहन का सफल प्रयोग कर दिखाया। अपार शक्ति चारों तरफ फैल गई। वैज्ञानिकों की आँखें चमक उठीं।

कई वैज्ञानिक सोच रहे थे कि इस शक्ति का उपयोग वे रचनात्मक कार्यों में करेंगे। बहुत-बहुत सारी शक्ति उत्पन्न होगी। बड़े-बड़े कल-कारखाने चल पाएँगे। उन कारखानों में लाखों मज़दूर कार्य करेंगे। ज़रूरी वस्तुओं का उत्पादन बढ़ता जाएगा। चारों तरफ होगी खुशहाली, अपार आनन्द! यह उन वैज्ञानिकों का स्वप्न था। वे भू पर ही पूर्णता का स्वर्ग बसा देना चाहते थे। शायद उनमें से किसी के मन में यह भावना भी न थी कि इस शक्ति का उपयोग संहार के लिए किया जाए।

मगर अमेरिका के वैज्ञानिकों के समक्ष एक विकराल कठिनाई उपस्थित हो गई - वे इसका उपयोग कैसे करें? जापान और जर्मनी के ध्वंसात्मक हमले बढ़ते ही जा रहे थे। जापान और फासिस्ट जर्मनी पूरे विश्व में अशान्ति फैला रहे थे। आखिर अणु शक्ति के प्रयोग की शुरुआत

रचनात्मक कार्यों के लिए नहीं हुई। उससे विनाशकारी, अत्यन्त विनाशकारी बम बनाए जाने लगे। वही बम, जिसने हिरोशिमा को बरबाद कर दिया। एक दम विनष्ट! धन-जन, पेड़, पशुओं से शून्य - ऊजड़, एकदम वीरान!

हिरोशिमा के विनाश को देखकर अमेरिका के वैज्ञानिक ओपेनहाइमर की आँखों के सामने अणु शक्ति के प्रयोग-परीक्षण की प्रथम घटना का चित्र तैरने लगा।

प्रथम परीक्षण 'ट्रिनिटी'

घटना 1945 की है। एटम बम का प्रथम परीक्षण। अमेरिका के एक सुदूर वीरान स्थान में, दूर तक फैली हुई रेगिस्तानी पहाड़ियों में किसी ऊजड़-पहाड़ी का एक भाग। बहुत ऊँचा। इस पहाड़ी पर सौ फीट ऊँची स्टील की मीनार एकदम सीधी खड़ी थी – आकाश को छूती हुई। इस पहाड़ी से कुछ मील दूर परीक्षण का एक अवलोकन-कक्ष था। सभी वैज्ञानिक वहीं घुसकर बैठे थे। फौजी अफसर भी वहाँ थे। सभी की आँखों पर सुरक्षा की दृष्टि से रंगीन चश्मे लगे हुए थे। सब की आँखों में उल्लास और जिज्ञासा तो थी ही, किन्तु वे आशंका और भय से भी भरी हुई थीं। फौजी अफसर कभी अपने साथियों की ओर देखते, तो कभी वैज्ञानिकों की ओर। और सब वैज्ञानिक अपने यंत्रों में मशगूल थे।

इस परीक्षण का प्रधान वैज्ञानिक - ओपेनहाइमर - भी वहीं बैठा था। यह प्रथम परीक्षण था, परन्तु फिर भी उसकी आँखें अडिग विश्वास से चमक रही थीं। आखिर वह अणु शक्ति का परीक्षण करने जा रहा था! अल-सुबह 5:29 बजने में अभी कुछ मिनिटों की देर थी। चारों तरफ हलचल और गहमागहमी थी। एक भयभीत वातावरण। परीक्षण खतरनाक

फोटो: शिगेयो हयाशी

चित्र-2: गेनबाकू गुम्बद, जिसे हिरोशिमा पीस मेमोरियल भी कहा जाता है, उस इलाके की इकलौती संरचना थी जो परमाणु बम के हमले से पूरी तरह तबाह नहीं हुई थी। परमाणु बम की विनाशकारी शक्ति और शान्ति की अहमियत की प्रतीक यह संरचना, एक संरक्षित खण्डहर है।

था। ओपेनहाइमर सोच में डूबा हुआ था। घड़ी का काँटा धीरे-धीरे खिसकता जा रहा था और सबकी दृष्टि आखिरी बटन दबाने वाले वैज्ञानिक की उँगलियों की ओर केन्द्रित होती जा रही थीं। 45 सेकण्ड शेष। फिर 30 सेकण्ड बचे। 20 सेकण्ड। तीन...दो... एक! और देखते ही देखते उस वैज्ञानिक ने अपनी उँगली से मशीन का बटन दबा दिया।

इस स्थान से उस ऊजड़ पहाड़ी पर लगी हुई स्टील की मीनार तक तारों का जाल बिछा था। उस जाल से मीनार तक वैज्ञानिकों और फौजी अफसरों की दृष्टियाँ भी फैलती गईं। दूरबीन से सभी एकटक देखते जा रहे थे। और फिर अचानक मीनार से बहुत तीव्र प्रकाश निकला। ज्योति की एक लहर। पूरा आकाश और आस-पास का सारा वातावरण चौंधिया गया। उस विस्फोट का प्रकाश सूर्य के प्रकाश से भी अधिक था। सैकड़ों गुना अधिक। देखते-देखते थोड़ी ही देर में इतनी तेज़ आँच और कम्पन अवलोकन कक्ष तक फैले कि लोग कराह उठे। विस्फोट के करीब चालीस सेकण्ड बाद अचानक धमाके की आवाज़ वहाँ तक पहुँची। इतना तेज़ धड़ाका कि कान के परदे फट जाएँ। मानो हज़ारों बिजलियाँ जैसे एकसाथ कौंधी हों! इसके बाद वैज्ञानिकों और फौजी अफसरों ने देखा कि आसमान में कुकुरमुत्ते के आकार का एक सुन्दर-सा छोटे-छोटे बादलों का समूह उठा। सभी आश्चर्य में डूब गए।

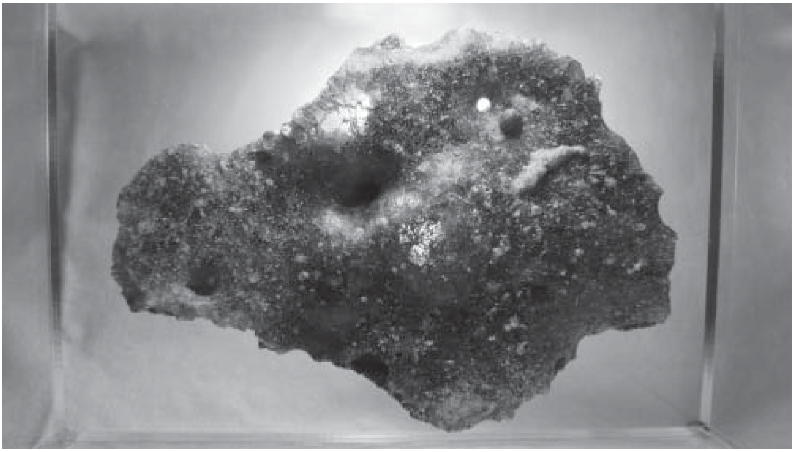

चित्र-3: *एटम बम के प्रथम परीक्षण 'ट्रिनिटी' के ऊष्मीय व रेडियोएक्टिव असर से उस रेगिस्तानी इलाके की रेत इस तरह के काँच में तब्दील हो गई थी। और फिर इस पदार्थ का नाम उस परीक्षण के नाम पर 'ट्रिनिटाइट' रख दिया गया।*

विध्वंस और विध्वंसकर्ता

वैज्ञानिकों को तो अतिशय विस्मय था अपने परीक्षण के परिणाम पर, वहीं फौजी अफसरों को विश्व-विजय का उल्लास अभी से हो रहा था। बाद में, वे सभी गाड़ियों में बैठकर उस मीनार की ओर गए। मीनार दिखी ही नहीं! सौ फीट ऊँची स्टील की मीनार अदृश्य। एकदम गायब! ज़मीन की ओर देखा तो मिट्टी भी गायब। रेत एक तरह के काँच के रूप में परिवर्तित हो गई थी – गहरे हरे रंग के काँच के रूप में। चारों तरफ काँच ही काँच बिछा दिखाई दे रहा था। आसपास के वातावरण में न पेड़ थे, न पौधे। और कुछ दूर चलने पर देखा कि पशु-पक्षी मरे पड़े हैं। वैज्ञानिकों ने यह सब देखा तो उनके चेहरे उदास हो गए। निराशा की एक स्याह लकीर उनके मस्तकों पर खिंच आई।

इस परीक्षण के प्रधान वैज्ञानिक ओपेनहाइमर ने अपना सिर पकड़ लिया था और, तथाकथित तौर पर, कहने लगा, "मैं काल बन चुका हूँ, विश्व का विध्वंसकर्ता।" वह निराश हो गया था। परन्तु दूसरी ओर फौजी अफसरों की विश्व-विजय की कल्पना साकार हो रही थी।

रचना और विध्वंस! उस वैज्ञानिक ने यह सोचा ही नहीं था कि अणु शक्ति को सैनिक इस कदर छीन लेंगे। रचनात्मक कार्यों के उद्देश्य से ही वैज्ञानिकों ने अणु शक्ति का दोहन करना चाहा था, और अब उसे ही विध्वंसात्मक कार्यों में इस्तेमाल किया जाने लगेगा – ओपेनहाइमर यह सोचकर ग्लानि से तड़प उठा।

और उसे समझ में आ गया कि विश्व में विध्वंस करने के लिए, विजय की लालसा से ये फौजी अफसर वैज्ञानिकों पर दबाव डालकर अणु बम बनवाएँगे। और ऐसा हुआ भी। उसने अपने राष्ट्र से दो टूक कहा कि वह अणु बम का इस्तेमाल न करे। उसने अणु बम की रोक-थाम के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भी माँग की, किन्तु अमेरिका ने यह बिलकुल भी स्वीकार नहीं किया।

और जब विश्व का पहला अणु बम हिरोशिमा पर गिराया गया, तो ओपेनहाइमर की आँखों में आँसू छलक आए। वह पछतावा करने लगा कि जाने-अनजाने उसके हाथ से कैसा विध्वंस का अस्त्र तैयार हो गया है।

भविष्य की कल्पना

पर अमेरिका में अणु शक्ति की गोपनीयता सुरक्षित नहीं रह पाई। और कुछ ही वर्षों में, अनेक देशों ने अणु बम, हाइड्रोजन बम आदि बनाना शुरू कर दिया। रूस ने बनाया, बिट्रेन ने बनाया, फ्रांस ने बनाया। अनेक देशों ने अणु बम तैयार किए, और अब, वे सब सर्वनाश के किनारे पर खड़े हो गए हैं, केवल अपने ही नहीं – पूरी पृथ्वी के।

आज विश्व दो गुटों में बँट गया है। विनाश के एक छोर पर एक गुट खड़ा है, और दूसरे छोर पर दूसरा गुट। यदि इनमें से किसी के भी द्वारा अणु बम का प्रयोग किया गया, तो मानव सभ्यता और संस्कृति नष्ट हो जाएगी। हरी-भरी फसलें, पशु-पक्षियों की चहल-पहल और कल-कारखाने सभी मिट जाएँगे। इस विनाश की कल्पना और आज सम्भावित इस दृश्य की कल्पना ओपेनहाइमर ने पहले ही कर ली थी, और इसी कल्पना ने उस वैज्ञानिक की आँखें सजल कर दी थीं।

(1964)

हरिशंकर परसाई (1924-1995): हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध व्यंगकार थे। व्यंग रचनाओं के अलावा उपन्यास और लेख भी लिखे। उनका जन्म जमानी, होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) में हुआ था। वे हिन्दी के पहले रचनाकार हैं जिन्होंने व्यंग्य को विधा का दर्जा दिलाया और उसे हल्के-फुल्के मनोरंजन की परम्परागत परिधि से उबारकर समाज के व्यापक प्रश्नों से जोड़ा। साहित्य अकादमी पुरस्कार, शिक्षा सम्मान (मध्य प्रदेश शासन), शरद जोशी सम्मान आदि से सम्मानित।

सभी चित्र इंटरनेट से साभार।

यह विज्ञान गल्प मित्र-बन्धु-कार्यालय, जबलपुर द्वारा सन् 1964 में प्रकाशित हरिशंकर परसाई की किताब *वैज्ञानिक कहानियाँ* से लिया गया है। यह किताब तैलंगाना क्षेत्र की ग्यारहवीं कक्षा के लिए नॉनडिटेल्ड प्रथम भाषा की पाठ्यपुस्तक के रूप में आन्ध्र प्रदेश शिक्षा विभाग द्वारा दी गई स्वीकृति के तहत प्रकाशित की गई थी।

यह लेख मूल लेख का सम्पादित स्वरूप है जिसमें तथ्यात्मक त्रुटियों को ठीक करने के साथ ही पठनीयता बेहतर करने की भी कोशिश की गई है।

चित्र: किचिसुके योशिमुरा

भिन्न हैं ये खेल

खेल-आधारित सीखने की मानसिकता का निर्माण

अर्जुन सान्याल

मैं एक निजी स्कूल में बच्चों के एक छोटे समूह को पढ़ा रहा था – कक्षा 4 के उन छात्रों के लिए यह एक प्रकार की संवर्धन कक्षा थी। उनके शिक्षकों के अनुसार वे 'तेज़ी-से सीखने वाले' छात्र थे। मेरा काम था, उन्हें एक अन्तरविद्यालयीन गणित प्रतियोगिता के लिए तैयार करना। उनके शिक्षकों ने पिछले वर्षों की प्रतियोगिताओं के प्रश्न सेट और अभ्यास वर्कशीट देकर इस काम के लिए मुझे निर्देशित किया था।

इस 'तेज़ी-से सीखने वाले' समूह में भी भिन्नताएँ थीं, और उनमें से दो बच्चों के बीच तो ये अन्तर बिलकुल स्पष्ट थे। इस लेख के लिए, हम उन्हें C और X कहेंगे। C शिक्षकों का पसन्दीदा छात्र था। वह बहुत मेहनती था, कक्षा में दिए गए निर्देशों को ध्यान से सुनता था, टेस्ट में पूरे अंक प्राप्त करता था और होमवर्क समय पर जमा करता था। दूसरी ओर, X गणित में अच्छा था, लेकिन वह अपने काम में बहुत लापरवाह रहता था, 'नादान गलतियाँ' करता था और अक्सर कक्षा में सपनों में खोया पाया जाता था।

शुरुआत में, मैं अधिक अनुभवी शिक्षकों के निर्देशों का पालन करते हुए तयशुदा तरीके पर ही टिका रहा और छात्रों में वर्कशीट बाँटकर पढ़ाता रहा। ऐसा करना वहाँ की आम शिक्षण पद्धति थी। भिन्न (fractions) एक चुनौतीपूर्ण विषय था, और उन वर्कशीट में इस तरह के कई प्रश्न होते थे –

$$8\frac{5}{11} + 8\frac{4}{7} = \underline{\hspace{3cm}}$$

हालाँकि, मैं इस तरह की गणनाएँ करने की अर्थहीनता पर हैरान था, जहाँ अलग-अलग हर वाले मिश्र भिन्नों को जोड़ना होता, और वह भी अभाज्य संख्याओं वाले हर! फिर भी, मैंने आदेश का पालन किया, और छात्रों से ऐसे

प्रश्न हल करवाता रहा। कुछ बच्चे, जैसे C, ऐसी गणनाएँ कर पाते थे लेकिन वे इसे यांत्रिक रूप से ही कर रहे थे और मूल अवधारणाओं को समझने में कठिनाई महसूस कर रहे थे। इसलिए, मैंने वर्कशीट को फिर से तैयार किया – छात्रों के संज्ञानात्मक (कॉग्निटिव) स्तर के आधार पर उनकी स्कैफोल्डिंग की, और अवधारणाओं को बेहतर तरीके से समझाने के लिए उन्हें कुछ गतिविधियों से जोड़ा।

लेकिन अभी भी यह बहुत-कुछ दस्तूर जैसा था। ये वर्कशीट पहले से अधिक दिलचस्प ज़रूर थीं, लेकिन बच्चों की ही तरह, मैं भी आखिर ऊब गया। मुख्य रूप से, मैं X को लेकर चिन्तित था, जिसे बिलकुल भी आनन्द नहीं आ रहा था और उसके काम का स्तर गिरने लगा था।

चलो, खेलते हैं!

हमारे कमरे में कुछ ज्यामितीय आकृतियाँ/पैटर्न के ब्लॉक थे, जिनका उपयोग अमूमन प्री-प्रायमरी या कक्षा 1-2 के बच्चों के साथ किया जाता था।

एक दिन, मैंने फैसला किया और कक्षा से कहा, "चलो, हम सभी खेलते हैं!" मैंने कक्षा के बीच में कुछ आकृतियाँ रखीं, और फिर हमने उनके साथ खेलना शुरू किया। हम अलग-अलग फ्रीस्टाइल (स्वछन्द) डिज़ाइन बनाने लगे, उनका एक-दूसरे के साथ संयोजन बनाकर, यह देखने लगे कि वे कैसे एक-दूसरे के साथ फिट होकर टेसेलेट[1] करते हैं। ऐसी ही एक कोशिश ने हमें यह जानने के लिए प्रेरित किया कि ये आकृतियाँ एक-दूसरे के ऊपर किस तरह फिट होती हैं। उदाहरण के लिए, समान्तर चतुर्भुज में कितने त्रिभुज फिट होंगे? आकृतियों के कौन-कौन-से संयोजन एक षट्भुज बनाएँगे? इस दूसरे प्रश्न के

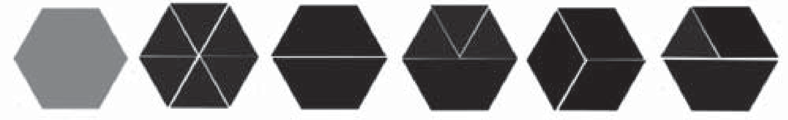

[1] आकृतियों, खास तौर पर बहुभुजों, के दोहराव से बने अलग-अलग पैटर्न। टेसेलेशन के पैटर्न में ये आकृतियाँ आपस में कुछ इस तरह फिट होती हैं कि उनके बीच न कोई रिक्त स्थान होता है, और न कोई ओवरलैपिंग।

लिए छात्रों ने सामान्य तरीके, यानी 6 त्रिभुजों का उपयोग करने, के साथ ही थोड़े कम सामान्य तरीके अपनाकर, यानी त्रिभुज, समान्तर चतुर्भुज, और समलम्ब (ट्रेपिज़ियम) के अलग-अलग संयोजन बनाकर, भी समाधान सुझाए।

जब हमने तरह-तरह के संयोजनों को खोज लिया, तो फिर हमने इस तरह के सरल प्रश्नों से शुरुआत की –

जहाँ C इस नए तरीके से असहज महसूस कर रहा था और बिना किसी ठोस परिणाम के इस खेल में उसकी रुचि नहीं थी, वहीं X को इसमें मज़ा आया। जब भी X कहीं अटकता, तो वह अपनी आकृतियों को वापस देखता और हल निकाल लेता था – यहाँ तक कि ज़्यादा कठिन सवालों के लिए भी।

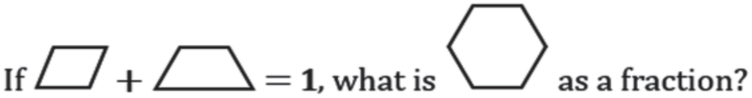

मैं यह देखकर भी अचरज में था कि किस तरह छात्रों ने आकृतियों की मदद से (बाद में तो बिना आकृतियों के भी) तर्क करना शुरू कर दिया, और अपने समाधानों को अलग-अलग तरीकों से व्यक्त करने लगे। नीचे दिए गए सवाल का समाधान एक छात्र ने आकृतियों के ज़रिए इस तरह समझाया कि यदि दो समान्तर चतुर्भुज मिलकर एक पूर्ण बनाते हैं, तो एक समान्तर चतुर्भुज को इसका आधा होना चाहिए। इस सवाल को आप भी हल करके देखिए - षट्भुज बनाने के लिए विभिन्न संयोजनों के चित्र देखते हुए।

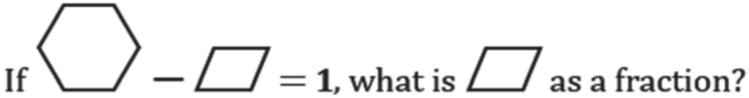

सभी के लिए भिन्न

इस तरह के खेलपूर्ण अभ्यास के बाद, क्या X मिश्र भिन्न के सवाल, C की तुलना में, जल्दी हल करने लगा? नहीं, C गणना में तेज़ था और तेज़ ही रहा। क्या कम-से-कम X ने मिश्र भिन्न के सवालों को हल करने की कोशिश शुरू की? हाँ! हालाँकि, वह उन सवालों को हल करने को लेकर अब भी उत्साहित नहीं था, मगर तब भी वह उन्हें पूरा करने की कोशिश करने लगा। उसमें अब पहले की तुलना में ज़्यादा आत्मविश्वास था। वह अपनी सोच साझा करने लगा, और यहाँ तक कि C की मदद करने की पेशकश भी करने लगा!

एक दिन कक्षा शुरू होने से पहले, C की माँ मुझसे मिलीं। उन्होंने पूछा, "मुझे इस तरह की और वर्कशीट कहाँ मिल सकती हैं? मैं उसे घर पर पढ़ाती हूँ, और मैंने पहले कभी ऐसे सवाल नहीं देखे। अगर मुझे पता चल सके कि ये कहाँ मिलती हैं, तो मैं उसे इनका और अभ्यास करवाऊँगी।" मैंने उन्हें हमारी शिक्षण पद्धति समझाई और शैक्षिक सामग्री भी दिखाई; अफसोस, वे आश्वस्त नहीं हुईं और इन नए प्रकार के सवालों के लिए अन्य अभ्यास-वर्कशीट की माँग करती रहीं।

धीरे-धीरे कक्षा पाठ्यपुस्तक के अधिक पारम्परिक सवालों को भी हल करने की ओर बढ़ी। लेकिन वे हमेशा कोशिश करते कि वे उन सवालों को हल करने के अलग-अलग तरीके खोज सकें।

मैंने इस अनुभव से क्या सीखा?

- छात्रों को दिए गए सवाल या समस्याओं के ज़रिए उन्हें अधिक खेलपूर्ण पड़तालों की तरफ लेकर जाया जा सकता है। मिश्र भिन्नों के पारम्परिक सवालों से हटकर पैटर्न ब्लॉक वाले सवालों की ओर बढ़ने से छात्रों में न केवल भिन्नों की अधिक गहरी समझ विकसित हुई, बल्कि उन्होंने कोण, सममिति, टेसेलेशन आदि के बारे में भी चर्चा की।
- शिक्षकों के पास अधिक स्वायत्तता होने की आवश्यकता है। हमें ऐसी प्रक्रियाओं की ज़रूरत है जो गुणवत्ता को बढ़ावा दें, न कि केवल मानकीकृत पाठ योजनाओं या वर्कशीट को। यदि मुझे स्कूल से यह लचीलापन नहीं मिलता, तो मैं छात्रों को सीखने की प्रक्रिया में शामिल करने के अन्य तरीकों की खोज नहीं कर पाता।
- सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि खेलपूर्ण तरीके से सीखने के लिए, हमें खेलपूर्ण शिक्षण की आवश्यकता होती है। हमें वयस्कों को अपने आप में अधिक खेलपूर्ण बनने के लिए प्रोत्साहित करने की भी ज़रूरत है। शुरुआत

में, मेरी मानसिकता ही बाधा थी। आखिर मुझे अधिक लचीला होना ही पड़ा, अलग-अलग प्रकृति के छात्रों के प्रति संवेदनशील होना पड़ा। विचारों, तर्क शैलियों और अर्थ-निर्माण के नए-नए तरीकों के प्रति उत्सुक, प्रेरित, और चुनौती महसूस करने के लिए अधिक खुला होना पड़ा।

अर्जुन सान्याल: अलग-अलग नॉन-प्रॉफिट संस्थाओं के साथ मिलकर शुरुआती बाल विकास व शिक्षा से जुड़े कार्यक्रमों पर काम किया है। वे खेल-आधारित अधिगम व गणित शिक्षण में गहरी रुचि रखने के साथ ही, समुदाय-आधारित व क्षमतावर्धन पहलों को विकसित करने में 'डिज़ाइन थिंकिंग' को लागू करने को लेकर जुनूनी हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: प्रमोद मैथिल: बीस से अधिक वर्षों तक शिक्षा के क्षेत्र में *एकलव्य* और सह्याद्रि स्कूल के साथ काम किया है। आजकल वे स्कूलों और गैर-सरकारी संस्थानों के लिए 'टिंकरिंग लैब' नामक कक्ष बनाते हैं, ताकि बच्चों के लिए सीखने के सृजनात्मक अवसर विकसित किए जा सकें।

सम्पर्क: pramod.maithil@gmail.com

नोट:

- खेलपूर्णता या खेल-आधारित शिक्षण के बारे में अधिक जानने के लिए, कृपया पेडेगॉजी ऑफ प्ले की ओर से यह वर्किंग पेपर पढ़ें। https://pz.harvard.edu/sites/default/files/PoP%20USA%20More%20than%20one%20way%20working%20paper_FINAL_25%20Jan%202021.pdf
- उपयोग किए गए संसाधनों और गतिविधियों के पीछे की प्रेरणा के बारे में अधिक जानने के लिए, कृपया जोड़ो-ज्ञान की वेबसाइट (https://www.jodogyan.org/) पर जाएँ। पैटर्न ब्लॉक को ऑनलाइन एक्सप्लोर करने के लिए भी कई वेबसाइट हैं। जैसे, https://www.coolmath4kids.com/manipulatives/pattern-blocks

सन्दर्भ:

- https://www.jodogyan.org/activity-resources-primary-rangometry/
- https://mouchaak.substack.com/

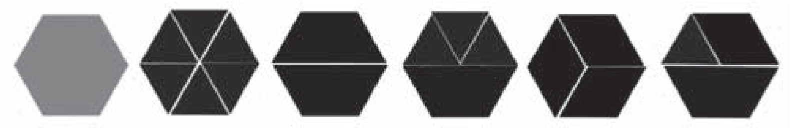

एक सरकारी स्कूल में पर्यावरण शिक्षा
हेंगावल्ली में मेरे अनुभव

दीप्ति अमीन

स्कूल का परिचय

यह शासकीय उच्च प्राथमिक शाला, कर्नाटक के उडुपी ज़िले में कुण्डापुर तालुका के हेंगावल्ली गाँव में है। मेरी मित्र पूर्णिमा इस स्कूल में पढ़ी है और उसके पिता इस स्कूल के सेवानिवृत्त प्रधान पाठक हैं। अत: मेरे और पूर्णिमा के लिए इस काम की शुरुआत यहाँ से करना सुविधाजनक था क्योंकि पूर्णिमा गाँव, गाँववासियों और शिक्षकों को जानती थी। स्कूल में कक्षा 1 से 8 तक के कुल 108 बच्चे और 7 शिक्षक हैं। इस पहल की शुरुआत अक्टूबर 2021 में हुई थी। यह साक्षात्कार-नुमा लेख दूसरे वर्ष के अन्त तक के अनुभवों पर आधारित है।

पहल का परिचय

जब हमने शुरुआत की, उस समय हमारे पास एक ही योजना थी। योजना

बस यह थी कि बच्चों को यह जानने का मौका देना कि उनके साथ उनकी भूमि कौन-कौन साझा करता है, अर्थात् कौन ज़मीन पर रेंगता है, कौन पत्थरों के पीछे छिपता है, कौन पेड़ों पर चढ़ता है व किस तरह के पेड़ों पर चढ़ता है, आसमान में कौन उड़ता है; और वे सब हमारे जीवन को कैसे प्रभावित करते हैं तथा हम उनके जीवन को कैसे प्रभावित करते हैं। हमारे पास न तो कोई पाठ्यक्रम (सिलेबस) था और न ही कोई पूर्व अनुभव। अलबत्ता, हमारे साथ दोस्तों की एक टोली थी, जिन्होंने अपने विचार साझा किए और हम अक्सर उनके साथ बातें किया करते थे कि क्या हो चुका है और क्या करने की ज़रूरत है।

हमने (मैं और मेरे बच्चों ने) लगभग हर चीज़ विभिन्न गतिविधियों - जैसे गड्ढे खोदना, बीज बोना, पौधों को पानी देना, निंदाई करना, पक्षियों को निहारना, कार्ड गेम्स तैयार करना, योग करना, खाना पकाना, सफाई करना - और खूब सारी चर्चाओं के माध्यम से सीखी है। कभी-कभी मैं उनका मार्गदर्शन करती थी तो कभी-कभी वे मेरा मार्गदर्शन करते थे। मेरा खयाल है कि एक-दूसरे को बराबर मानने पर आधारित यह सम्बन्ध ही सीखने और विचार साझा करने की कुंजी थी (हाँ, यह ज़रूर था कि निहायत ज़रूरी होने पर मैं एक सख्त शिक्षक की तरह पेश आती थी, और वह ज़रूरत समय के साथ कम होती चली गई)।

प्रश्न: कौन-से अनुभवों ने आपको यह प्रोजेक्ट उठाने में समर्थ बनाया?

मुझे हमेशा से ऐसी जीवन शैली आकर्षित करती थी जो ईको-फ्रेंडली हो, स्वस्थ हो और हर दिन नए-नए हुनर सीखने से भरपूर हो। इस मामले में मेरा पहला सम्पर्क सांगत्या से हुआ था। सांगत्या जैविक कृषि के एक खेत के इर्द-गिर्द गठित एक समूह है। यह जैविक खेत कर्नाटक के उडुपी ज़िले के कराला ब्लॉक में एक ऐसी जगह स्थित है जहाँ कोई बहता पानी नहीं है, कोई मशीनें नहीं हैं और कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। जब मैं छोटी थी, तब भी मेरा जीवन ऐसा ही था। अन्तर सिर्फ इतना था कि उस समय मेरे पास कोई विकल्प नहीं था। वह तो जब मैं सांगत्या आई, तब मुझे समझ में आया कि ऐसे जीवन का तभी कोई मतलब है जब वह हम खुद चुनें। और मुझे खुशी है कि मैंने सही समय पर सही चुनाव किया। उसके बाद मेरी ज़िन्दगी बदल गई। इस जगह के ज़रिए मैं कई और लोगों से मिली, नए-नए दोस्त बनाए, और सीखने की चाह में कई अन्य ऐसी ही जगहों पर गई। यही एकमात्र विचार था, वह सीखना जो मैं सीखना चाहती थी, जो मुझे लगता था कि सबसे महत्वपूर्ण है, जो मुझे लगता था कि उस दिशा में आगे बढ़ने के लिए ज़रूरी है। वह यात्रा आज भी जारी है। पिछले कुछ वर्षों में मैंने कुछ अद्भुत आदतें विकसित की हैं; जैसे अपना खाना खुद उगाना, खुद पकाना, सायकिल सवारी करना, पक्षियों को निहारना, पढ़ना, आसपास की खरपतवार और पेड़ों के बारे में जानना, और कुछ असाधारण लोगों की मदद से बच्चों के साथ रहना। इन सब चीज़ों ने मिलकर मेरे जीवन को वह बनाया, जैसा वह आज है।

प्रश्न: आपने क्या सीखा?

सामंजस्य ही कुंजी है। यह मेरा सबसे बड़ा सबक रहा। लोग और चीज़ें, दोनों समय लेते हैं, परिवर्तन में समय लगता है। मनमाफिक परिवर्तन के लिए आप में लगन और धैर्य होना चाहिए। मैंने देखा कि एक बच्चे ने कक्षा में मेरे द्वारा कही गई किसी बात का वास्तविक अर्थ, कक्षा होने के पूरे दो साल बाद समझा था। ऐसी कई घटनाएँ हैं जिनके माध्यम से मैं यह समझ पाई हूँ कि यदि कोई चीज़ करने योग्य है, तो मुझे उसे करते जाना चाहिए, चाहे उसके परिणाम देखने को मिलें या न मिलें – उसी समय या बाद में कभी।

मैंने यह सीखा कि किसी बच्चे को ऐसा शिक्षक नहीं चाहिए होता है जो सिर्फ सिखाए। दरअसल, उसे एक श्रोता की ज़रूरत होती है जो उसकी बात सुने। कई सारे उम्दा विचार मुझे किसी बच्चे को सुनते हुए मिले हैं।

बच्चों ने ऐसी-ऐसी समस्याएँ सुलझाईं जो मैं नहीं सुलझा पा रही थी, और यह सिर्फ सुनने के कारण हुआ। उन्होंने मेरे घमण्ड और अहंकार को कई बार तोड़ा है और इसने मुझे बेहतर बनने में ही मदद की है। शिक्षक कोई व्यक्ति नहीं होता, यह तो उस क्षण निभाया गया एक किरदार होता है। वह किरदार और वह क्षण कोई भी अपना सकता है। तो, मैं अब कक्षा में पढ़ाने के लिए नहीं जाती हूँ। मैं तो यह देखने जाती हूँ कि कौन वह क्षण अपनाता है और उसी के साथ कक्षा शुरू हो जाती है।

मैंने सवालों को अलग ढंग से पूछना सीखा। जैसे, अतीत में जब मैं बच्चों से कुछ करवाना चाहती थी, तो मैं उन्हें बताती थी कि उसे कैसे करना है, कब करना है, कौन-कौन उस टीम में शामिल होगा वगैरह। अब मैं उन्हें

कहती हूँ, “अरे यार, मैं यह काम करवाना चाहती हूँ। लेकिन मुझे नहीं पता कि तुमसे कैसे करवाऊँ। मदद करोगे क्या?” यह हर बारी कारगर रहता है और मेरी 90 प्रतिशत ऊर्जा बच जाती है। बच्चे योजना बनाने में, खुद को संगठित करने में और अपना नेता चुनने में कहीं बेहतर होते हैं। हाँ, समय ज़रूर ज़्यादा लगता है लेकिन इस प्रक्रिया को देखना अद्‌भुत होता है और ज़्यादा कार्यक्षम भी।

मैंने सीखा है कि बच्चों को हमेशा समझदारी भरे जवाब देना चाहिए, चाहे उनकी उम्र कुछ भी हो। लिहाज़ा, मैं ऐसे वाक्यों का उपयोग नहीं करती, "मैं तुम्हें बता नहीं सकती, तुम समझ नहीं पाओगे, तुम अभी बहुत छोटे हो, तुम्हें ऐसे सवाल नहीं पूछना चाहिए, तुम्हें यह जानने की ज़रूरत नहीं है" वगैरह। समय के साथ मैंने पेचीदा चीज़ें भी सरल ढंग से समझाना सीख लिया है ताकि कोई भी बच्चा समझ पाए। इस आदत ने मुझे रचनात्मक भी बना दिया। और बच्चों के साथ मेरे सम्बन्ध को पूरी तरह बदल डाला।

प्रश्न: बच्चों ने क्या सीखा?

चूँकि करने/सीखने की ज़िम्मेदारी बच्चों को ही सौंप दी गई है, इसलिए वे ज़्यादा जवाबदेह महसूस करते हैं। कोई बीज जिसे उन्होंने बोया है, उसे अंकुरित होते देखा है और जिसे उन्होंने सब्ज़ियों की क्यारी में रोपा है, तो निश्चित रूप से उसे पानी दिया जाएगा, उसका अवलोकन किया जाएगा और सुरक्षित रखा जाएगा। वे ध्यान रखते हैं कि भोजन के बाद वे अपनी थाली में पानी भरकर अपने पौधे के पास जाएँ। यह मेरा विचार नहीं था। हर बार भोजन करके अपनी थाली-कटोरी-गिलास धोने के बाद वे उनमें पानी भरकर सीधे पौधों के पास चले जाते हैं।

उन्होंने सीखा है कि किसी भी तरह का प्रश्न पूछने में कोई बुराई नहीं है और चर्चा का हमेशा स्वागत होता है। चर्चाओं के दौरान जो जानकारी वे जुटाते हैं, वह उनके भेजों में सुरक्षित रहती है। और मैंने उन्हें इसका उपयोग अत्यन्त व्यावहारिक रूप में करते देखा है। लिहाज़ा, मैं चर्चा के लिए हमेशा तैयार रहती हूँ, क्योंकि पता नहीं किस चर्चा में से कोई नई खोज ही निकल आए।

बच्चों ने मेरी कक्षा में कायदों को तोड़ना सीखा है। ईमानदारी से कहूँ, तो मुझे लगता है कि इनमें से अधिकांश कायदे बच्चों को दबाकर रखने के लिए और शिक्षक के लिए उन्हें सम्भालना आसान बनाने के लिए गढ़े गए हैं। वे तो जंगल के समान हैं: उद्दण्ड, विविधतापूर्ण और आत्म-सुधार की प्रवृत्ति वाले। उन्हें मात्र सही माध्यम की ज़रूरत है। किसी जंगल को एकल फसल में तबदील करना विकास नहीं होता। तो हम खुशी-खुशी कई कायदों को तोड़ते हैं और परिणाम अद्भुत रहे हैं।

यह आम बात है कि बच्चे शिक्षक के पास शिकायत लेकर पहुँचते हैं। शिक्षक पूरी कहानी सुनता है (हमेशा नहीं) और दोषी को सज़ा देता है। मैंने जितना देखा है, उस हिसाब से तो यह और शिकायतों को ही जन्म देता है। दरअसल, बच्चों को मज़ा आता है जब शिक्षक शरारती बच्चे की पिटाई

करते हैं। इसलिए वे इन्तज़ार में रहते हैं कि कब किसी बच्चे को पकड़कर शिक्षक अपने कमरे में ले जाएँ। मैं इस सबसे इतनी थक गई थी कि मैंने एक छुटकू अदालत लगाने का फैसला किया जिसमें मैं न्यायाधीश नहीं होती हूँ। हम सब दोनों पक्षों को सुनते हैं और सबसे (दोषी ओर पीड़ित समेत) पूछते हैं कि हमें इस मामले में क्या करना चाहिए। हालाँकि, वे शुरुआत इसी से करते हैं, "उसकी पिटाई होनी चाहिए" लेकिन अन्त में वे अद्‌भुत समाधान ढूँढ निकालते हैं। और ज़्यादातर समय पीड़ित बच्चा दोषी को माफ कर देता है। अर्थात् बच्चों ने खुद से समस्याओं को सुलझाना सीखा है।

प्रश्न: शिक्षकों और स्कूल प्रशासन ने क्या सीखा?

शिक्षक और प्रशासन पहले से कहीं अधिक सहयोगी हुए हैं। कई बार बच्चों को मेरे पास अतिरिक्त सत्र के लिए भेजा गया है - किसी विषय को बेहतर समझने या प्रायोगिक प्रदर्शन के लिए। वे स्वास्थ्य, पेड़-पौधों और जन्तुओं, बागवानी वगैरह में मदद के लिए मुझसे सम्पर्क करते हैं। कई बार ऐसा लगता है कि चीज़ें उनके हाथों से निकल गई महसूस होती हैं, उदाहरण के लिए, जब बच्चों और मैंने कुत्तों की हड्डियाँ ढूँढ निकालीं और तय किया कि उन्हें लायब्रेरी में रखना चाहिए, तब भी उन्होंने (शिक्षकों ने) कोई ऐतराज़ नहीं किया!

प्रश्न: समुदाय ने क्या सीखा?

पालकों के साथ मेरा संवाद अब कहीं बेहतर है। मैं उनसे मिलती रहती हूँ और वे बताते हैं कि उनके बच्चे मेरी कक्षा को कितना पसन्द करते हैं और उन्होंने क्या कुछ नया सीखा है। वे जानते हैं कि मैं पर्यावरण से सरोकार रखती हूँ और हम इसके बारे में बातें भी करते हैं। घर के नज़दीक चीज़ें अधिक बेहतर हैं। इसमें बगीचे की एक बड़ी भूमिका है। यदि बगीचा न हो तो मुर्गियों के दड़बे या मधुमक्खियों को यह भूमिका निभानी पड़ती है। हमारी (मेरी और जीवन की) उठापटक ने हमें कई हुनर सिखाए हैं और लोगों को यह विश्वास दिलाया है कि हम ऐसी कई चीज़ें जानते हैं जो वे नहीं जानते। बीज, पौधों की साझेदारी, नई तरकारियाँ और मधुमक्खियाँ दिखाना सदा मज़ेदार रहा है। मेरा खयाल है कि लायब्रेरी और बगीचा कई मायनों में एक-जैसे होते हैं। जब हम जीवन शैली, पर्यावरण और पारिस्थितिकी के बारे में सीखने की कोशिश करते हैं या दूसरों को सिखाने की कोशिश करते हैं, तो दोनों ही अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं।

प्रश्न: इस सबने आपके आसपास की प्रकृति को कैसे प्रभावित किया?

आसपास की प्रकृति का अवलोकन करने, उसमें उपस्थित जीवों को पहचानने की आदत ने मुझे और बच्चों को संवेदनशील बनने में मदद की है। घर पर तो बच्चों को हमेशा सिखाया जाता है कि इनसे दूर रहो या इन्हें मार डालो। हमारे स्कूल की शिक्षा ने इसे बदल दिया है। अब बच्चे घर जाते हैं और तथाकथित खतरनाक जीवों के बारे में अपने परिवार की गलतफहमियाँ दूर करते हैं। कई बार बच्चे घर से किसी नई दलील/ गलतफहमी के साथ लौटते हैं और फिर चर्चा के ज़रिए उसका जवाब खोजा जाता है। फिर वे लौटकर अपने पालकों को आश्वस्त करते हैं। यह कई दिनों तक चलता रहता है। इस प्रक्रिया ने यकीनन कई नन्हे जीवों की जान बचाई है क्योंकि बच्चे अब समझते हैं कि उनका जीवन भी महत्वपूर्ण है।

समय के साथ बच्चों की एक राय और बदली है। कई बार यथार्थ में और वृत्त-चित्रों (डॉक्यूमेंटरीज़) में हम देखते हैं कि कुछ जन्तु अन्य पर हावी रहते हैं - प्रकृति में हमेशा तकलीफ, उत्पीड़न, मृत्यु, चोरी, हिंसा, धोखाधड़ी वगैरह ही पाए जाते हैं। हम जानते हैं कि ये सब इन्सानी नज़रिए से नकारात्मक पहलू हैं। समय के साथ बच्चों ने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात सीखी है कि प्रकृति में अच्छा या बुरा, सौम्य या घृणास्पद व्यवहार कुछ नहीं होता। और यह सब उत्तरजीविता तथा सन्तुलन की ओर यात्रा भर है। वे विभिन्न तरह के चक्रों को समझ पाते हैं। एक मायने में यह उन्हें मानव व्यवहार को समझने में भी मदद करता है।

प्रश्न: आप प्रकृति के साथ संवाद कितना सीख पाई हैं? क्या आपमें से कोई प्रकृति को अपने से संवाद करते सुन पाया?

मैं अपना अधिकांश समय बाहर खुले में बिताती हूँ। और मैं हमेशा कुछ-न-कुछ नया निहारती रहती हूँ। जब मैं बगीचे में जाती हूँ, तो महसूस होता है जैसे मैं लोगों से भरे किसी उत्सव में हूँ। बगीचे में बहुत सारे बाशिन्दे हैं जो अलग-अलग समय पर अलग-अलग जगह साझा करते हैं। मैं बगीचे की कई छिपकलियों से बातें करती हूँ, विभिन्न पेड़ों पर उनकी कलाबाज़ी के हुनर को सराहते हुए। जब कोई मकड़ी जाला बुनती है, तो मैं यह देखने को निश्चल खड़ी रहती हूँ कि वह किस दिशा में आगे बढ़ेगी। मैं चींटियों की कतारों को निहारती रहती हूँ, यह देखने के लिए कि वे कहाँ से आ रही हैं, कहाँ जा रही हैं और क्या ले जा रही हैं। इसके साथ मैंने सीखा है कि मैं चींटियों की मौजूदगी में मज़े से टहल सकती हूँ, बशर्ते कि मैं उनकी

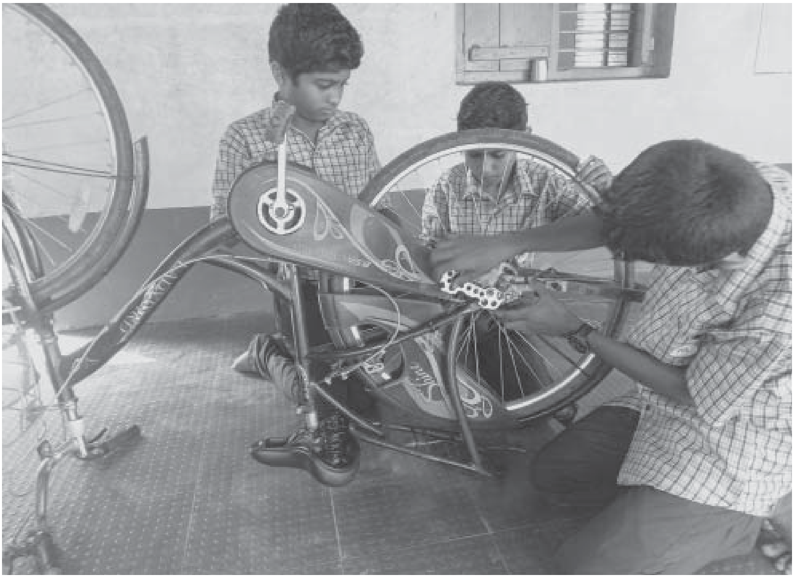

कतार पर पैर न रखूँ। आखिर, वे भी तो व्यस्त जीव हैं जो अपने काम-से-काम रखते हैं। मुझे काटना तो चींटियों के लिए एक अनावश्यक अतिरिक्त काम होगा। प्रकृति से संवाद करने का काम बच्चे कहीं बेहतर करते हैं। मैं तो सिर्फ उस सबकी बातें करती हूँ जो मैं प्रकृति में देखती हूँ। दूसरी ओर, बच्चों को पूरा यकीन होता है कि प्रकृति क्या महसूस कर रही है और क्या सोच रही है। मैं उनकी ये बातें सुनते घण्टों बिता सकती हूँ, यह सराहते हुए कि वे कल्पना की छलांग मारने की कैसी ज़बर्दस्त क्षमता रखते हैं।

प्रश्न: किसी युवा व्यक्ति के लिए जो ऐसा ही काम करना चाहे, आपकी क्या सलाह होगी? उसे इस तरह का काम करने के लिए क्या-क्या सीखना होगा?

सबसे पहली बात कि उन्हें सीखने को उत्सुक होना चाहिए। बाहर दुनिया में देखने, महसूस करने, सुनने को इतना कुछ है। और यह सब हमें स्कूलों-कॉलेजों में नहीं सिखाया जाता। इसे सिर्फ निजी दिलचस्पी और प्रयासों से ही सीखा जा सकता है। जो कोई इसी तरह का काम करना चाहे, उन्हें खुद से पूछना चाहिए कि वे इसके प्रति सचमुच जुनूनी हैं या यह महज एक मोहक खयाल है। यदि पक्का न हो, तो किसी ऐसे व्यक्ति के साथ कुछ समय बिताना बेहतर होगा जो पहले से ही यह काम कर रहा/रही हो। उनकी दिनचर्या से कुछ स्पष्टता मिलेगी।

शिक्षक कोई व्यक्ति नहीं होता, यह तो उस क्षण निभाया गया एक किरदार होता है। वह किरदार और वह क्षण कोई भी अपना सकता है।

इनके अलावा कुछ विशिष्ट सुझाव भी साझा करना चाहूँगी।

पुस्तकें – मेरी यात्रा में पुस्तकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। पुस्तकें हमें बहुत सारे नए विचार देती हैं, औरों के अनुभव साझा कर हमारा समय बचाती हैं और जब भी ज़रूरत पड़े, उपलब्ध होती हैं। मैं खुशनसीब थी कि मेरे ऐसे दोस्त थे जो मुझे सही पुस्तकें सुझा और उपलब्ध करवा सकते थे। इस कार्य क्षेत्र से सम्बन्धित पुस्तकों की एक बढ़िया सूची अत्यन्त महत्वपूर्ण और अनिवार्य है।

डायरी – एक नोटबुक रखना और अपने अवलोकन व सबक लिखना हमेशा से उपयोगी रहा है। इसके चलते हम गलतियाँ दोहराने से बच जाते हैं और रास्ता नहीं भटकते हैं।

बच्चों के साथ समय बिताना – सबसे पहले तो आपको उनकी संगत पसन्द होनी चाहिए। उन्हें यह बताने की बजाय कि वे क्या करें, हमें उन्हें सुनना चाहिए। हमारी निजी तैयारी बहुत महत्व रखती है। हम बच्चों को उल्लू नहीं बना सकते। हमें हमारी मिट्टी, हमारे पेड़ और उन पर रहने वाले जीवों के बारे में पता होना चाहिए। यदि इन सबके बारे में हम बच्चों से बात करना चाहते हैं, तो ज़रूरी है कि बच्चों से इनको महसूस करने को कहने से पहले हम खुद इनका अनुभव करें क्योंकि बच्चे जो कुछ सीखेंगे, वह उससे सीखेंगे जो हम सचमुच हैं, न कि हम क्या कहते हैं कि हम कौन हैं।

दीप्ति अमीन: 29 वर्षिय दीप्ति एक प्रशिक्षित प्राकृतिक चिकित्सक (नैचुरोपैथी डॉक्टर) हैं। उनकी दिलचस्पी बच्चों में, जैविक खेती में और पर्माकल्चर व योग में है। वे ग्रामीण बच्चों के साथ काम करती हैं। उनसे drdeepthiamin@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

सभी फोटो: दीप्ति अमीन

यह लेख countercurrents.org के 17 फरवरी, 2024 के अंक से साभार।

धरती के अन्दर, सूरज के पार

स्मिति

लाइब्रेरी पीरियड के लिए बच्चे कक्षा से बाहर आकर बैठ गए हैं। यह जगह खुली हुई है, और पढ़ने-पढ़ाने के लिए कक्षा से अधिक उपयुक्त लगती है। एक कोने में रस्सी बँधी हुई है, जिस पर बहुत सारी किताबें टँगी हैं। बच्चे दरी पर बैठे हैं। संगीताजी भी बच्चों के साथ नीचे ही बैठ गईं। वे विद्या भवन द्वारा चलाए जा रहे शैक्षिक कार्यक्रम की तरफ से स्रोत व्यक्ति हैं और इस कार्यक्रम से जुड़े स्कूलों में कक्षा 6, 7 और 8 के बच्चों के साथ पुस्तकालय से सम्बन्धित गतिविधियाँ करती हैं। अनिलजी जो इस कार्यक्रम में फील्ड सँभालते हैं, बताते हैं कि जगह कम होने की वजह से कक्षा में पुस्तक वितरण और गतिविधियाँ ठीक से नहीं हो पातीं, इसलिए वे बच्चों को बाहर ले आते हैं।

बच्चों के साथ कविता-कहानी पाठ

बच्चे व्यवस्थित ढंग से बैठे थे। कुछ हमें कौतूहल से देख रहे थे, कुछ आपस में फुसफुसा रहे थे। कक्षा-7 के बच्चों से संगीताजी ने पूछा कि क्या उनमें से किसी के घर के लोग खेती करते हैं या कुछ उगाते हैं। कुछ बच्चों ने ‘हाँ’ बोला, तो वे उनसे उस सम्बन्ध में और भी प्रश्न पूछने लगीं। एक बच्चे ने बताया कि उसके यहाँ गाजर उगाते हैं, तो वे उस बच्चे

से गाजर निकालने की प्रक्रिया के बारे में पूछने लगीं। इसके उपरान्त उन्होंने बच्चों से पूछा कि क्या वे एक बाल-गीत सुनना चाहेंगे? बच्चों ने ज़ोर-से 'हाँ' बोला तो उन्होंने सबसे गोला बनाकर खड़े होने के लिए कहा। कविता एक बुढ़िया के गाजर खोदने के मज़ेदार प्रयासों के बारे में थी। संगीताजी हाथों से अभिनय करती जा रही थीं और बच्चे उसे मज़े से दोहरा रहे थे। कविता खत्म होते-होते ज़्यादातर बच्चे हँसने लगे थे।

अब संगीताजी ने बच्चों के साथ एक कहानी 'अड़ियल गधा' के शीर्षक पर बात शुरू की, और उनसे 'अड़ियल' शब्द का अर्थ पूछा। बच्चे एक बार में सटीक उत्तर नहीं दे पाए, पर थोड़ी बातचीत के बाद अर्थ तक पहुँच गए। उन्होंने पुस्तक का कवर बच्चों को दिखाया और पूछा कि वे क्या देख पा रहे हैं। फिर उस कहानी में क्या हो सकता है, इस पर संक्षेप में बात करने के बाद वे बच्चों को किताब दिखाकर कहानी सुनाने लगीं। संगीताजी को कहानी याद थी, इसलिए वे कहानी सुनाते हुए किताब का मुँह बच्चों की ओर रखे हुई थीं, और बीच-बीच में प्रश्न भी पूछती जा रही थीं। वे थोड़ी और बातचीत करना चाहती थीं, पर इतने में पीरियड खत्म हो गया।

फिर कक्षा-8 के बच्चे आकर बैठ गए। उन्होंने कहा कि वे भूत की कहानी सुनेंगे। संगीताजी ने उन्हें एक कहानी सुनाई, जिसमें एक व्यक्ति रात में छत पर टँगे कुर्ते को भूत समझ उस पर गोलियाँ दाग देता है। कहानी सुनाने के बाद उन्होंने बच्चों से भूत से जुड़ी उनकी अवधारणाओं और अनुभवों के बारे में प्रश्न किए और उन प्रश्नों के जवाब में आई किसी भी बात को तिरस्कृत या नकारा नहीं बल्कि बच्चों से इस बारे में और सोचने एवं पढ़ने के लिए कहा।

क्या हो पाठ्यपुस्तकों की भूमिका?

बातचीत के दौरान उन्होंने बच्चों से पूछा, "सूरज पृथ्वी के चक्कर लगाता है या पृथ्वी सूरज के?" बच्चे कहते हैं, "सूरज पृथ्वी के।" उन्होंने फिर पूछा, "हम पृथ्वी पर रहते हैं या पृथ्वी में?" कुछ बच्चे कहते हैं, "पृथ्वी में।" फिर मैंने बच्चों से पूछा, "अगर सूर्य पृथ्वी के चक्कर लगाता है तो चन्द्रमा कहाँ होता है?" वे कहते हैं, "आसमान में।" एक बच्ची कहती है कि "चन्द्रमा सारे समय आकाश में ही होता है, दिखता बस रात में है।" बच्चे उसकी कही बात के बारे में सोचते हुए बताते हैं, "हाँ, कभी-कभी दिन में भी दिखता है।" संगीताजी बच्चों के जवाब सुनकर और सवाल पूछती जा रही थीं और उन्हें बता रही थीं कि इन सब प्रश्नों के जवाब उन्हें पुस्तकों में मिल सकते हैं। उन्होंने इस ओर संकेत ज़रूर किया कि बच्चे अपनी

बनाई हुई अवधारणाओं के बारे में पढ़ और पूछकर संशोधन कर सकते हैं, पर उनकी समझ को नकारकर, वे उन्हें बिलकुल भी हीन महसूस नहीं करा रही थीं।

मैं पीछे बैठकर यह सब देख-सुन रही थी, और याद करने की कोशिश कर रही थी कि कितनी बार यह कहा जाता है कि इधर-उधर की किताबें न पढ़कर सिर्फ कोर्स की किताबें पढ़नी चाहिए। लेकिन बच्चों के कोर्स की किताबों में तो सौरमण्डल के बारे में बताया जा चुका है। क्या बच्चों की उत्सुकता को उनकी कोर्स की किताबें टटोल पा रही हैं? बच्चों को मुक्त चिन्तन के लिए, और पढ़ने के लिए प्रेरित कर पा रही हैं?

अच्छे पुस्तकालय-संचालक का रोल

मैं लाइब्रेरी की अवधारणा के बारे में भी सोच रही थी। हम पुस्तकालय को किताबों से भरे एक कमरे के रूप में कल्पित करने के आदि हैं जहाँ बातचीत करना मना होता है। पर मुझे पुस्तकालय का यह रूप, जहाँ बच्चे और किताबें, दोनों खुले में हैं, ज़्यादा सहज और प्रभावी लग रहा है। बच्चे यहाँ किताबों को देखने-सुनने के बाद उनके बारे में बात कर पा रहे थे। मैं लाइब्रेरी में एक अच्छे संचालक की भूमिका के बारे में भी सोच रही थी। संगीताजी जैसी गतिविधियाँ कर रही थीं, वैसी गतिविधियाँ मैंने अपने स्कूली जीवन में लाइब्रेरी पीरियड में कभी देखी ही नहीं। पर यह ज़रूर कह सकती हूँ, वैसा होता तो मुझे बेहद अच्छा लगता। यहाँ उपलब्ध किताबें भी लाइब्रेरी में दिखने वाली आम किताबों से ज़रा अलग थीं।

यहाँ मौजूद चित्र-पुस्तकें ज़्यादा न पढ़ पाने वाले पाठकों में कौतूहल पैदा करने वाली हैं और समझ का

सारा भार शब्दों पर न डालने की वजह से नन्हे पाठकों के लिए अधिक ग्राह्य लगती हैं। संगीताजी बहुत कुशलता से हर कहानी का सन्दर्भ (कॉन्टेक्स्ट) भी बनाती चल रही थीं, जो बच्चों के अपने परिवेश से जुड़ता है। बहुधा हम एक सन्दर्भ से दूसरे सन्दर्भ तक पहुँचने में अच्छे पुस्तकालयों और उससे भी ज़्यादा शुरुआती दौर में अच्छे संचालकों का महत्व भूल जाते हैं। आम तौर पर हम मान लेते हैं कि बच्चों को किताबें बोझिल लगती हैं, पर हम यह नहीं स्वीकार करना चाहते कि हमने बच्चों के लिए रोचक किताबें ढूँढने की मेहनत ही नहीं की। यह मेहनत कुछ स्कूलों में होती दिखती है, तो थोड़ा सम्बल बँधता है। यह आशा बनी रहती है कि बच्चे किताबों से खोजकर वह ज्ञान शामिल कर लेंगे जिसको पाना कई सालों की बोझिल उबाऊ स्कूली शिक्षा उनके लिए सम्भव नहीं कर सकी। और वे आने वाली पीढ़ियों को कहानियाँ सुनाते हुए पूछ सकेंगे कि हम धरती के भीतर रहते हैं या बाहर, और अगर धरती वाकई घूम रही है तो हम चक्कर खाकर गिर क्यों नहीं जाते?

यांत्रिक बनाम सजीव शिक्षण

एक अन्य स्कूल की छठी कक्षा में संगीताजी 'पहाड़ी पर पेड़ था' कविता सुना रही थीं। इस कविता में हर बार एक नई पंक्ति जुड़ती जा रही थी और हर बार पिछली सब पंक्तियाँ दोहराई जाती थीं। कविता का विषय बड़ा सरल था, इसलिए बच्चे क्रमानुसार कविता याद रख पा रहे थे। यहाँ किसी पर भी शुद्ध या साफ बोलने का दबाव नहीं था, इसलिए सब बच्चे कविता पाठ में हिस्सा ले रहे थे और मूल पंक्ति आने पर उत्साहित होकर ज़ोर-से बोल रहे थे। बच्चे घेरा बनाकर खड़े हो गए और खुश दिख रहे थे। इस तरह की गतिविधियों में हिस्सा लेना मुझे निजी तौर पर असहज करता है, पर उस दिन मैं भी उस हिचकिचाहट का कुछ हिस्सा अलग रख, इस सजीव कविता पाठ का हिस्सा बन गई थी।

इसके बाद संगीताजी ने बच्चों को एक कहानी सुनाई जिसे बच्चों ने चाव से सुना। अगले दिन उच्च माध्यमिक विद्यालय में बच्चों से बातचीत करते हुए संगीताजी उनकी भाषा (मेवाड़ी) में बिल्ली, बकरी, भेड़ आदि के नाम एवं उनके बच्चों के नाम पूछ रही थीं और उन्हें बोर्ड पर लिखती जा रही थीं। बच्चे बीच-बीच में हँसते जा रहे थे।

इससे पहले बच्चे बोर्ड पर लिखे दीपावली के निबन्ध को कॉपी में उतार रहे थे। मैंने बगल में बैठी सोनल की कॉपी मांगकर देखी तो पाया कि निबन्ध साफ-सुथरे तरीके से लिखा हुआ है। लेकिन बोर्ड पर लिखा हुआ देखकर उतारने पर भी उसने बहुत-से शब्दों की वर्तनी बोर्ड से भिन्न

लिखी है, ह्रस्व और दीर्घ मात्राओं में कई जगह अन्तर था। इससे यह पता चलता है कि इस तरह का यांत्रिक शिक्षण बच्चे को सजग होकर अध्ययन की प्रक्रिया में शामिल नहीं करता है, बच्चे अपने ही लिखे हुए को ध्यान देकर पढ़ने या समझने के लिए लालायित नहीं हो पाते।

इसके बाद बातचीत में यह सवाल पूछा जाता है कि क्या कुत्ता एवं बिल्ली या बिल्ली और चूज़ा दोस्त हो सकते हैं? कुछ बच्चों ने 'हाँ' कहा तो कुछ ने मना किया। एक बच्ची ने बताया कि उसके घर में चिड़िया, बिल्ली और कुत्ता, तीनों हैं और वे एक-दूसरे से लड़ते नहीं हैं। फिर संगीताजी ने बच्चों को एक किताब दिखाई जिसके कवर पर एक चूज़ा और बिल्ली थे, कहानी का शीर्षक था 'नन्हे चूज़े की दोस्त'। बच्चे कहानी के सन्दर्भ को कक्षा में हुई बातचीत से जोड़ पा रहे थे और खुश दिख रहे थे।

मेरे दो दिन की स्कूल विज़िट का आखिरी पड़ाव शैक्षणिक संवर्धन कार्यक्रम के अन्तर्गत आने वाले स्कूलों में सबसे दूर स्थित रोबा माध्यमिक विद्यालय था। मुझे नहीं पता था कि दूर-दराज़ का यह स्कूल मुझे सबसे ज़्यादा प्रभावित करेगा। यहाँ संगीताजी कविताएँ सुना रही थीं और साथ ही वे एकॉर्डियन चित्र-पुस्तकें भी बच्चों को दिखा रही थीं जिनमें ये कविताएँ लिखी हैं। ये पुस्तकें हम अपने साथ लेकर गए थे जो बच्चे बहुत चाव से देख रहे थे। यदि कोई बच्चा ज़्यादा उलट-पलट करता तो बच्चों में से ही कोई उसे

टोकता कि “देखो, फाड़ मत देना।” संगीताजी ने बच्चों को एक पंक्ति देकर कहा कि “अब आगे की कहानी में हर बच्चा एक पंक्ति जोड़ेगा।” कहानी बढ़ती जा रही थी और कुछ ही मिनटों में बच्चों ने अपनी ही एक कहानी गढ़ डाली।

यहाँ शिक्षकों की कमी है, इसलिए कक्षा 6 और 7 के बच्चे एक-साथ बैठते हैं। विद्याभवन के कार्यक्रम की ओर से आने वाले हेमराज बच्चों के बीच लोकप्रिय हैं और बड़ी कक्षाओं के बच्चे भी चाहते हैं कि वे उनकी कक्षा में आया करें। हेमराज यथासम्भव ऐसा करने की कोशिश करते हैं, पर बहुधा ऐसा नहीं हो पाता है। यहाँ से उठकर संगीताजी आठवीं कक्षा में चली गईं। कुछ देर बाद जब हम पहले वाली कक्षा में लौटे तो पाया कि हेमराज के कहने पर बच्चों ने अपनी बनाई हुई कहानी स्मृति के सहारे अपनी कॉपियों में साफ-सुन्दर शब्दों में नोट कर ली है। मैं बच्चों की कॉपियाँ देखकर बहुत हैरान हुई। मुझे नहीं लगता कि उनकी उम्र में मैं इतना लम्बा गद्य, जो सिर्फ सुना हो, जिसका कोई चित्र भी न देखा हो, उसे इतनी स्पष्टता से कागज़ पर लिख सकती थी। मैं इसलिए भी आश्चर्यचकित थी क्योंकि पिछले दिनों में देखे गए अधिकतर स्कूलों में बच्चे लिखने-पढ़ने में अभी इतने दक्ष नहीं हुए थे। उसके बहुत-से कारण थे। मैंने स्कूल की प्राइमरी शिक्षा के बारे में पूछा तो पता चलता कि यहाँ पर्याप्त संख्या में शिक्षक नहीं हैं और इसलिए बहुत बार शिक्षकों की जगह बड़ी कक्षाओं के बच्चे छोटी कक्षाओं के बच्चों की सहायता करते हैं। प्रिंसिपल खुद अधिकांश समय कक्षाओं में पढ़ा रही होती हैं। कोई भी बाहरी मदद स्कूल को मिलती है तो प्रिंसिपल और शिक्षक सहर्ष उसका स्वागत करते हैं।

छोटी चीज़ें बड़े अन्तर पैदा करती दिखीं, और मुझे एहसास हुआ कि जैसे लाइब्रेरी में अच्छे संचालक होने से बहुत कुछ बेहतर हो सकता है, वैसे ही प्रतिबद्ध शिक्षकों के होने से बहुत-सी मुश्किलों से पार पाया जा सकता है।

स्मिति: जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से भाषा विज्ञान में पीएच.डी. कर रही हैं। शिक्षा, शिक्षा की भाषा, और बहुभाषीय शिक्षण जैसे विषयों में खास रुचि है। बच्चों की भाषा, स्कूल में उनके सन्दर्भों के लिए जगह, कक्षा में एकाधिक भाषाओं की सम्भावना, आदि के बारे में बहुत कुछ जानना और समझना चाहती हैं।

यह लेख विद्या भवन एजुकेशन रिसोर्स सेंटर द्वारा संचालित परियोजना ‘शिक्षा सम्बल कार्यक्रम’ के अनुभव के आधार पर लिखा गया है।

सभी फोटो: स्मिति।

वो बचपन जो कुछ खास है

जगदीश यादव, आकाश मालवीय

बचपन एक बहुत ही विशेष अवस्था होती है क्योंकि बच्चे ही नहीं, बड़े भी अपने बच्चों के बचपन को भरपूर जीते हैं, और बचपन का आनन्द लेते हैं। परन्तु यह भी एक वास्तविकता है कि इस अवस्था में कई सारे बच्चे अपने बचपन को मन माफिक जी ही नहीं पाते क्योंकि बच्चे के मन की भावनाओं को समझ पाना, इस अवस्था के गुणों को पहचान पाना, उनकी ज़रूरतों को समझ पाना हर किसी के लिए आसान नहीं होता है। यहाँ आप प्रकाश नाम के एक बच्चे के बचपन की वास्तविकताओं से रूबरू होंगे।

प्रकाश होशंगाबाद ज़िले के एक गाँव में रहता था। माँ से अलग होने के बाद वह बैतूल ज़िले में अपनी नानी के साथ रहता है। 2023 में प्रकाश 13 साल का हो गया था और कक्षा तीसरी में पढ़ता था। आप सोच रहे होंगे कि उम्र तो ज़्यादा है फिर कक्षा तीसरी में क्यों। इस बारे में आप आगे जानेंगे।

घरु हालात थे ऐसे

छुटपन में प्रकाश अपने माता-पिता और भाई-बहन – पूरे परिवार के साथ अपना बचपन जी रहा था। प्रकाश के पिता आदतन शराबी और हिंसक प्रवृत्ति के थे। शराब पीना और घर में पड़े रहना, यही उनका रोज़ का काम था। प्रकाश की माँ मज़दूरी करके जितने भी पैसे लातीं, प्रकाश के पिता मारपीट कर सारे पैसे छीन लेते और शराब में उड़ा देते। यही घटनाक्रम चार साल तक चलता रहा - शराब पीकर आना, गाली-गलौज कर घर की शान्ति को भंग करना, धमकी देना, पत्नी और बच्चों को मारना। कई दिन ऐसे भी आते थे जब इन सबसे बचने के लिए प्रकाश की माँ को अपने बच्चों के साथ पड़ोसियों के घर में बिना खाए-पिए छिपे रहना पड़ता था। फिर एक बार प्रकाश की माँ ने जोखिम उठाया और अपने तीनों बच्चों को लेकर मायके चली गईं। अब मायकेवालों को भी लगने लगा कि जान पर बन आई है इसलिए बेटी और बच्चे मायके में ही रहें। प्रकाश जब दो साल का था तब उसके माता-पिता एक-दूसरे से अलग हो गए थे।

पति से अलग होने के बाद प्रकाश की माँ अपने तीन बच्चों के साथ मायके में 5 साल तक रहीं। मायके

की आर्थिक स्थिति भी दयनीय थी इसलिए इन सबके खर्चे भारी पड़ने लगे। प्रकाश के मामा और नानी ने मिलकर प्रकाश की माँ के लिए दूसरा रिश्ता पक्का कर दिया। यहाँ भी मुसीबतें झेलने के बाद प्रकाश की माँ ज़्यादा सोच नहीं पाईं और इस रिश्ते के लिए हामी भर दी।

प्रकाश अब तक 7 साल का हो चुका था। प्रकाश की माँ अपने दो बच्चों के साथ अपनी नई ज़िन्दगी की शुरुआत करने के लिए मुम्बई चली गईं। प्रकाश अपने मामा और नानी के साथ ही रुका रहा। आप सोच रहे होंगे कि आखिर माँ अपने तीसरे बच्चे, प्रकाश को अपने साथ क्यों नहीं ले गईं। इसका मुख्य कारण था, प्रकाश का शारीरिक रूप से थोड़ा-सा अक्षम होना। प्रकाश के दोनों हाथ शरीर के बाकी अंगों की तुलना में थोड़े छोटे, दुबले और खिंचे हुए हैं। जब वह चलता है तो उसके पैर और हाथ मुड़े और फैले हुए रहते हैं। शायद इसीलिए प्रकाश की माँ ने उसे मायके में ही छोड़ना सही समझा।

प्रकाश का लर्निंग सेंटर तक आना

ग्रामीण अंचल के कई गाँवों में *एकलव्य* फाउण्डेशन द्वारा 'मोहल्ला लर्निंग एक्टिविटी सेंटर' चलाए जाते हैं। प्रकाश के गाँव में भी ऐसा ही एक सेंटर चलाया जा रहा है। इस सेंटर का संचालन जगदीश यादव करते हैं। प्रकाश ने इस केन्द्र में आना किस तरह शुरू किया, इसके बारे में जगदीश बताते हैं कि एक दिन जब वे मोहल्ले के बच्चों से सम्पर्क करने पहुँचे तो उस दौरान उनकी मुलाकात प्रकाश से हुई। प्रकाश उस वक्त टायर से खेल रहा था। जगदीश ने यह वाक्या यूँ बयान किया।

मैंने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

कुछ देर के लिए वह बच्चा चुप रहा और फिर बोला, "प्रकाश।"

मैंने फिर पूछा, "कौन-सी कक्षा में पढ़ते हो?"

उसने कहा, "मैं नहीं पढ़ता हूँ।"

"अच्छा, कितने साल के हो गए हो?"

प्रकाश ने कहा, "9 साल।"

"स्कूल क्यों नहीं जाते हो?"

प्रकाश ने जवाब दिया, "मैं सब लोगों जैसा चल-फिर नहीं सकता। मुझे सब बच्चे चिढ़ाते हैं, और लड़ाई करते हैं। इसलिए मेरे मामा और नानी स्कूल जाने से मना करते हैं।"

मैंने पूछा, "पढ़ना चाहते हो?"

प्रकाश ने कहा, "मामा और नानी बोलेंगे तो पढ़ लूँगा।"

फिर मैं प्रकाश के साथ उसके घर गया और उसके मामा और नानी से पूछा, "आप प्रकाश को स्कूल क्यों नहीं भेजना चाहते हैं?"

प्रकाश के मामा ने जवाब दिया कि "प्रकाश का आधार कार्ड और समग्र आईडी नहीं हैं। अब हम क्या

करें। प्रकाश की मम्मी मुम्बई में रहती हैं और प्रकाश के पापा ने इसे छोड़ दिया है। फिर भी हमने कोशिश की कि स्कूल में उसका दाखिला हो जाए परन्तु शिक्षकों ने बिना आईडी के दाखिला देने से मना कर दिया।"

मैंने कहा, "स्कूल न सही पर गाँव में *एकलव्य* द्वारा बच्चों के लिए खोले गए केन्द्र में आप प्रकाश को भेज सकते हैं। मैं प्रकाश का पूरा ध्यान रखूँगा।" उनके चेहरे बयाँ कर रहे थे कि वे प्रकाश को केन्द्र में भी नहीं भेजना चाहते थे। उन्हें डर था कि प्रकाश की बाकी बच्चों के साथ नहीं बन पाएगी।

मैंने कहा, "लड़ाई नहीं होगी। मैं वहाँ किस लिए हूँ!" फिर भी नानी नहीं मानीं, तो मैंने कहा, "अच्छा, एक काम करते हैं। कुछ दिनों तक मैं प्रकाश को केन्द्र साथ ले जाऊँगा और वापस घर भी छोड़ दिया करूँगा।" यह सुनकर प्रकाश के मामा और नानी उसे 'मोहल्ला लर्निंग एक्टिविटी सेंटर' भेजने के लिए राज़ी हो गए।

आपसी सामंजस्य की चुनौतियाँ

प्रकाश की ज़िम्मेदारी तो ले ली थी परन्तु मैं काफी चिन्तित था कि प्रकाश के साथ सब ठीक रहेगा या

कुछ बड़े बच्चे प्रकाश को केन्द्र में आते-जाते परेशान करते थे। उसे कुछ भी बोल देना, चिढ़ाना आदि मेरी उपस्थिति या अनुपस्थिति में चलता रहा। बच्चों के इस बर्ताव से प्रकाश रोने लग जाता और गुस्सा होकर घर चला जाता था। कई बार तो वह गुस्से में आकर बच्चों को मार भी देता था। यह सब देखकर मुझे प्रकाश की काफी चिन्ता

नहीं। बहरहाल, कुछ दिनों तक मैं प्रकाश को अपने साथ लाना, ले जाना करता रहा। ऐसा करने से प्रकाश और प्रकाश के परिजनों का मेरे प्रति विश्वास बना। कुछ दिनों बाद प्रकाश के मामा और कभी-कभार उसकी नानी भी छोड़ने के लिए आने लगे। और बाद में वो दिन भी आया जब प्रकाश अकेला केन्द्र पहुँचने लगा।

शुरुआत में प्रकाश बहुत ही चुप-चुप-सा रहता था। किसी से ज़्यादा बातें नहीं करता था परन्तु जो काम उसे दिया जाता, उसे वह कर लेता था। लेकिन बाकी बच्चे उससे दोस्ती नहीं करना चाहते थे। उन्हें लगता था कि प्रकाश उन जैसा नहीं है, शरीर और स्वभाव से अलग है।

होने लगी थी परन्तु मैंने ठान रखा था कि प्रकाश के प्रति बाकी बच्चों के रवैये को बदलकर रहूँगा।

इन व्यावहारिक समस्या से छुटकारा पाने के लिए मैंने आकाश मालवीय जो इसी केन्द्र में मेरे साथी हैं, के साथ मिलकर सभी बच्चों से गम्भीरता के साथ सामूहिक रूप से बातचीत की और उनसे पूछा, “तुम सब प्रकाश के साथ ऐसा व्यवहार क्यों करते हो जबकि प्रकाश भी तुम जैसा ही बच्चा है? क्या उसे तुम लोगों के चिढ़ाने से बुरा नहीं लगता होगा? उसे गुस्सा नहीं आता होगा? यदि कोई तुम्हें कुछ भी बोलकर चिढ़ाए तो तुम्हें कैसा महसूस होगा?” इस तरह की स्पष्ट बातचीत से

बच्चे थोड़े तो संवेदनशील और सतर्क हुए।

इसके अलावा प्रकाश से भी अकेले में और पालक सम्पर्क के दौरान बातचीत होती रही। केन्द्र में वह जो भी काम करता, उसकी प्रशंसा सभी बच्चों के समक्ष की जाती, समूह में कार्य करते वक्त उस पर विशेष ध्यान रखा जाता। इससे उसका आत्मबल बढ़ा और वह चुनौतीपूर्ण कार्य करने के लिए भी तैयार हुआ। इन सभी प्रयासों की बदौलत धीरे-धीरे प्रकाश का मन केन्द्र में रम गया और बाकी बच्चों के साथ तालमेल भी बढ़ा।

केन्द्र में आने से पहले प्रकाश को बीड़ी पीने और गुटखा खाने की लत लगी हुई थी। यह लत उसे अपने मोहल्ले के अन्य बड़े बच्चों को देखकर लगी थी। हमने प्रकाश को समझाया और उसके परिजनों से भी इस पर बात की और प्रकाश को इस लत से दूर किया।

प्राइमरी शाला में दाखिला

साल 2020 में, गाँव के प्राइमरी स्कूल में सहजकर्ता अशोक सर का आना हुआ। अशोक अनियमित बच्चों से सम्पर्क करने के उद्‌देश्य से प्रकाश के मोहल्ले में गए। वहाँ उनकी मुलाकात प्रकाश से हुई। जब उन्होंने प्रकाश से पूछा कि कौन-से स्कूल में पढ़ते हो तो प्रकाश ने कहा, “स्कूल तो नहीं जाता पर मोहल्ला केन्द्र में पढ़ने जाता हूँ।” यह सुनकर अशोक सोच में पड़ गए कि प्रकाश 9 साल की उम्र में भी स्कूल में पढ़ने क्यों नहीं जाता। प्रकाश के मामा और नानी से बात करने पर उन्हें मालूम चला कि प्रकाश का आधार कार्ड और समग्र आईडी नहीं हैं। इसलिए अभी तक उसका स्कूल में दाखिला नहीं हो पाया है। अशोक जी की मदद से प्रकाश के दोनों पहचान पत्र जल्द ही बन गए। उसके बाद प्रकाश मोहल्ला केन्द्र के अलावा स्कूल भी जाने लगा। उस वक्त प्रकाश को पहली कक्षा में दाखिला मिला था, अब वह कक्षा चौथी में पहुँच गया है।

मोहल्ला केन्द्र में

नियमित रूप से आने की वजह से वह भाषा और गणित की बुनियादी दक्षताओं को हासिल कर पाने में सफल हो पाया है। अब प्रकाश हिन्दी लिख और पढ़ लेता है। 1000 तक गिनती लिख और पढ़ लेता है। चार अंकों में हासिल के जोड़, घटाने के बिना हासिल वाले सवाल, दो संख्या में एक संख्या का गुणा करना, सम संख्या में भाग करना जैसे सवाल व भिन्न के सवाल भी हल कर लेता है। प्रकाश को बतौर प्रोत्साहन क्लास का मॉनिटर बना दिया गया है।

प्रकाश की पारिवारिक स्थितियों को देखें तो पिता की बुरी आदतों की वजह से माता-पिता अलग हो गए। ऐसे में वह जिस प्यार-दुलार का हकदार था, वो उसे नहीं मिला। शारीरिक विकलांगता की वजह से माँ उसे छोड़, उसके बाकी भाई-बहन को साथ लेकर दूसरे पति के घर चली गईं। इस तरह उसे भाई-बहन के स्नेह से भी वंचित होना पड़ा। लेकिन मोहल्ला सेंटर की पहल से प्रकाश को पढ़ाई करने और स्कूल जाने का मौका मिल पाया। तमाम चुनौतियों के बावजूद वह कुछ अच्छा कर सकता है, यह दिखा पाने का अवसर भी उसे मिला।

आज भी शारीरिक या मानसिक रूप से अक्षम बच्चों को मुख्यधारा की शिक्षा में शामिल करने तथा समावेशी शिक्षा के लिए संवेदनशील और उपयुक्त माहौल बना पाना एक संघर्षभरा काम है जिसकी बहुत ज़रूरत है।

इस लेख में पहचान उजागर न हो इसलिए बच्चे का नाम एवं जगह के नाम बदल दिए गए हैं।

जगदीश यादव: तीन वर्षों से *एकलव्य* संस्था, शाहपुर में बच्चों और समुदाय के साथ जुड़े कार्यों जैसे - मोहल्ला लर्निंग एक्टिविटी सेंटर और टेक्नोलॉजी मीडिएटेड इंटरेक्टिव लर्निंग से जुड़े हुए हैं। बच्चों और समुदाय के साथ सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में खास रुचि रखते हैं। वर्तमान में, *एकलव्य* के लाइब्रेरी और रीडिंग इनीशिएटिव में सामुदायिक पुस्तकालय (चकमक क्लब) से जुड़कर बच्चों के साथ सीखने-सिखाने का काम कर रहे हैं।

आकाश मालवीय: आठ वर्षों से *एकलव्य* संस्था, शाहपुर से जुड़े हुए हैं। वर्तमान में, शाहपुर में शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र की सम्पूर्ण ज़िम्मेदारियाँ सँभाल रहे हैं। बच्चों के साथ गणित सीखने और बच्चों, समुदाय और शिक्षकों के साथ काम करने में खास रुचि। साथ ही, *एकलव्य* में गणित स्रोत टीम के सदस्य हैं।

सभी चित्र: हिमांशी मोने: स्वतंत्र रूप से चित्रकारी करती हैं। डिज़ाइनिंग में विशेष रुझान। कुछ अद्वितीय तैयार करने के लिए रचनात्मकता और तकनीक का मिश्रण करने के लिए रोमांचित रहती हैं।

आभार: लेखन में सहयोग के लिए अशोक हनोते को धन्यवाद।

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक, जो आपको सोचने को विवश करती है

अविजित पाठक

अमन मदान की किताब *एजुकेशन एण्ड मॉडर्निटी: सम सोश्योलॉजिकल पर्सपेक्टिव*, की अविजित पाठक द्वारा समीक्षा।

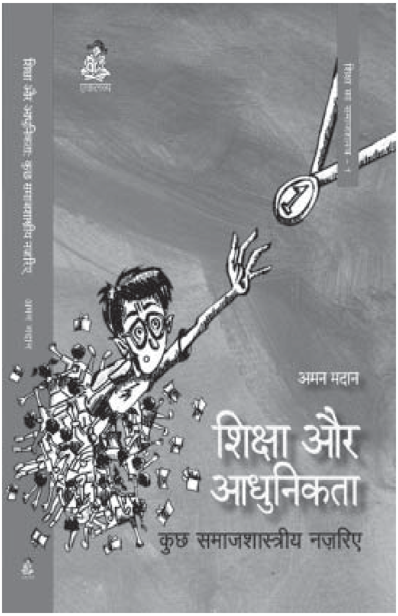

प्रतिष्ठित शिक्षाविद् अमन मदान शान्ति, टकरावों के समाधान और शिक्षा के समाजशास्त्र पर अपने गहन चिन्तन के लिए जाने जाते हैं। और इस बार, जब मैंने इस पतली-सी पुस्तक को पढ़ना आरम्भ किया, तो एक बार फिर उनकी सृजनात्मक दक्षता को महसूस किया – आधुनिकता और शिक्षा की परस्पर क्रियाशीलता का परीक्षण करने की प्रक्रिया में अन्तर्ध्वनित समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्यों के साथ प्रयोग करने की उनकी काबिलियत। मुझे लगता है कि बौद्धिकता के आत्ममोह से पीड़ित अकादमिकों से भिन्न, मदान एक प्रतिभाशाली सम्प्रेषणकर्ता हैं; वे अपने पाठकों में (और उन पाठकों का विश्वविद्यालयीन अध्यापक या शोधकर्ता होना ज़रूरी नहीं है) पेचीदा विचारों की समझ पैदा कर सकते हैं और आधुनिक समय में शिक्षा को देखने के विविध ढंगों के प्रति उनकी दिलचस्पी जगा सकते हैं। आश्चर्य की बात नहीं कि समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों और रोज़मर्रा अनुभवों के मिश्रण से युक्त इस पुस्तक का अपना आकर्षण है। हाँ, विचारों की स्पष्टता और सटीक चित्रों और रेखांकनों से युक्त इस पुस्तक में उस चीज़ को पूरा करने की सम्भावना है जिसकी अपेक्षा लेखक ने की है – 'पाठक में उन और अधिक चीज़ों को पढ़ने की आकांक्षा जगाना जो हमारे समय में शिक्षा के बारे में अन्य समाज-वैज्ञानिकों ने कहा है।'

शुरुआती तौर पर, मैं उस 'समाजवैज्ञानिक कल्पना' के विचार को सामने लाना चाहता हूँ जिसकी क्रान्तिकारी अमेरिकी समाजशास्त्री सी. राइट मिल्स ने सराहना की है। यह 'निजी तकलीफों' को 'सार्वजनिक मुद्दों' में रूपान्तरित करना है। एक सरल-सा उदाहरण लें। मान लीजिए कि एक दलित छात्रा अपने स्कूल में खुद को उपेक्षित और वंचित महसूस करती है। क्या यह उसकी अपनी गलती है कि वह 'सराहनीय' या 'बुद्धिमान' नहीं है? या फिर यह प्रभावी सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक व्यवहार है जो अभी तक सुस्थापित जाति-व्यवस्था और उससे जुड़ी सांस्कृतिक और प्रतीकात्मक हिंसा का उन्मूलन करने में विफल रहा? वास्तव में, एक ज्ञानात्मक अनुशासन के रूप में समाजविज्ञान हमें प्रभावशाली कॉमनसेंस के परे ले जा सकता है, और हमें अपने जीवन-क्रम को समझने के लिए वृहत् सामाजिक व्यवस्था को समझने में मदद कर सकता है। मैं इस पुस्तक से एक अनूठा उदाहरण लेता हूँ। मदान उस मुश्किल का हवाला देते हैं जिसका सामना ग्रामीण क्षेत्रों के छात्रों को नगरीय स्कूलों में प्रवेश लेते समय करना पड़ता है। यह कहना आसान है कि ये छात्र इतने समझदार नहीं होते कि वे यह समझ सकें कि उन्हें क्या पढ़ाया जा रहा है। लेकिन फिर, अगर हम समाजशास्त्रीय ढंग से सोचें, और 'अनुभव के अपने छोटे-से दायरे' से बाहर निकलकर देखें, तो इस मसले की हमारी समझ को एक नया आयाम मिलेगा। मदान के अपने शब्दों में:

समाजशास्त्री इस बात की ओर संकेत करते हैं कि हिन्दुस्तान के स्कूलों में पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें, परीक्षाएँ और अध्यापक, सभी नगरों में दफ्तरी नौकरियों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। इस वजह से स्कूल उन छात्रों के लिए ज़्यादा आरामदेह बन जाते हैं जो ऐसे परिवारों से आए होते हैं जो पहले से ही इस तरह की नौकरियों में होते हैं, और अन्य सामाजिक पृष्ठभूमियों से आए छात्रों के लिए वे अलगाव पैदा करने वाले और अजनबी होते जाते हैं। यह बोध उस ढंग को बदल देता है जिससे हम ग्रामीण पृष्ठभूमि से आए छात्रों के सामने पेश आने वाली समस्याओं को समझते हैं। यह सामाजिक व्यवस्था की एक व्यापक समस्या है जिसके लिए केवल उन्हीं को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। (पृष्ठ 19)

समाजशास्त्र: आधुनिकता की उपज

मदान अपने पाठकों को समाजविज्ञान के क्षेत्र में आमंत्रित करते हैं, और उन्हें आधुनिकता और शिक्षा पर सोचने के लिए बाध्य करते हैं। बहरहाल, यह कहा जा सकता है कि समाजविज्ञान एक ज्ञानात्मक अनुशासन के रूप में आधुनिकता की उपज है – तर्कबुद्धि के अपने सिद्धान्त

और जाँच-पड़ताल की अपनी नई विधियों के साथ, और औद्योगिकीकरण, पूँजीवाद तथा तकनीकी-वैज्ञानिक विकास जैसे सामाजिक आर्थिक रूपाकारों के साथ 'प्रगति' का जश्न मनाते यूरोपीय एनलाइटनमेण्ट के युग की उपज। उन तीन 'क्लासिकल' चिन्तकों के बारे में सोचें जिनकी चर्चा समाजशास्त्री अक्सर करते हैं - एमिली दुर्खेम, मैक्स वेबर और कार्ल मार्क्स। जैसा कि रॉबर्ट निस्बेत ने खूबसूरत ढंग से कहा है, ये तीनों चिन्तक औद्योगिक पश्चिमी पूँजीवाद का सामाजिक भूदृश्य रच रहे थे। दुर्खेम जटिल समाजों की क्रियाशीलता की सूक्ष्म समझ के लिए जाने जाते थे - उस पद्धति की समझ के लिए जिसके तहत 'जैविक एकजुटता' के नए रूप को 'यांत्रिक एकजुटता' से अलगाया जाना चाहिए ताकि उदीयमान व्यक्तिवाद और व्यावसायिक/सांस्कृतिक भेदों के बीच किसी तरह की सामाजिक और नैतिक संयोजकता को बहाल किया जा सके। वेबर ने पूँजीवाद के उदय में प्रोटेस्टेण्टिज़्म/काल्वनिज़्म के निहितार्थों का परीक्षण किया था। इसके अतिरिक्त, उन्होंने दुनिया के बढ़ते हुए तार्किकीकरण/बौद्धिकीकरण की, और 'वैधानिक, तार्किक' प्रभुत्व के नए रूप के तौर पर (स्कूलों से लेकर अस्पतालों तक; बैंकों से लेकर कारखानों तक - आधुनिक संस्थाओं के प्रबन्धन के लिए) नौकरशाही संरचना की निर्मिती के बारे में बात की थी। और मार्क्स ने सामन्तवाद के पतन तथा पूँजीवाद के उदय के साथ नए वर्गों की निर्मिति की पड़ताल की थी। इसके अतिरिक्त, उन्होंने अपनी द्वन्द्वात्मक तर्कणा और राजनैतिक-आर्थिक विश्लेषण की मदद से पूँजीवाद के अन्तर्विरोधों की पहचान की थी। एक तरह से, हमारे समय में समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों के विकास को इन उत्कृष्ट चिन्तकों के साथ एक किस्म की सृजनात्मक और आलोचनात्मक मुठभेड़ के रूप में देखा जा सकता है। और समाजशास्त्रीय सिद्धान्त अनेक चिन्तकों के योगदान के माध्यम से विकसित होने लगे, जिनमें टेल्कॉट पार्सन्स से लेकर जॅर्गन हेबरमास तक, या एन्थॅनी गिडनस से लेकर मिशेल फूको तक, परिप्रक्ष्यों की बहुलता थी। और इस मूल्यवान सैद्धान्तिक बहस ने इन बदलते हुए वक्तों में शिक्षा की हमारी समझ को बढ़ाने में भी मदद की।

अर्थपूर्ण व आलोचनात्मक पड़ताल

जो चीज़ मदान की इस पुस्तक को विशिष्टता प्रदान करती है, वह है समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों की समृद्ध परम्पराओं से अर्थपूर्ण अन्तर्दृष्टियाँ अर्जित करना और अपने पाठकों को अर्थपूर्ण और आलोचनात्मक ढंग से शिक्षा की क्रियाशीलताओं की पड़ताल के लिए प्रेरित करना। अपने तर्कों के

समर्थन के लिए, मैं इस पुस्तक से तीन उदाहरण लेता हूँ।

पहला, एमिले दुर्खेम के कृतित्व का हवाला देते हुए, मदान अपने पाठकों से सावधानीपूर्वक और ध्यान से सोचने का आग्रह करते हैं। हाँ, 'जैविक एकजुटता' के बीजों को समेकित करते हुए, 'स्कूलों को विभिन्न समूहों, क्षेत्रों और समुदायों के बीच संश्लेषण का बोध विकसित करने की ज़रूरत है'। इस तरह, वे समझते हैं कि क्यों 'दुर्खेम ने यह तर्क दिया था कि स्कूलों का मार्गदर्शन करने में राज्य की विशेष भूमिका है'। लेकिन फिर, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आधुनिक जटिल समाजों को दो समान रूप से महत्वपूर्ण ज़रूरतों के साथ निरन्तर समझौता-वार्ता करते रहने की ज़रूरत है – भेद और एकजुटता, या व्यक्तिवाद और सामाजिक जुड़ाव; और अगर यह नाज़ुक सन्तुलन बिगड़ जाता है, तो हमें – सामाजिक अव्यवस्था (एनॉमिक डिसऑर्डर) से लेकर सृजनात्मकता की क्षति तक – कई समस्याओं का सामना करना होगा।

यद्यपि, दुर्खेम के मुताबिक, 'सामाजिक विसंगति (एनॉमी) मापदण्डहीनता और आत्महत्या समेत कई समस्याओं का कारण बन सकती है, लेकिन मदान अपने सूक्ष्म विश्लेषण के सहारे हमें यह स्मरण कराना नहीं भूलते कि 'दिमाग की विसंगत (एनॉमिक) अवस्थाएँ अत्यन्त सृजनात्मक भी हो सकती हैं, जो लोगों को नवाचारी होने की, नए समाधान और आचरण के नए ढंग तलाशने की ओर प्रवृत्त कर सकती हैं'। एक तरह से, वे आपको सोचने को बाध्य करते हैं। इसी तरह, वे स्वीकार करते हैं कि 'विविध लोगों और संस्कृतियों को जटिल समाज में एकसाथ लाना और उन्हें महज़ अपने परिवार के सदस्यों के साथ नहीं बल्कि एक-दूसरे से जुड़े होने का एहसास कराना महत्वपूर्ण है'। जहाँ इस किस्म के 'कार्यात्मक' तर्क जिसकी पक्षधरता एमिले दुर्खेम और टेलॅट पारसॅन्स करते हैं, की अपनी प्रासंगिकता हो सकती है, वहीं मदान पाठकों को यह स्मरण कराना नहीं

भूलते कि सब कुछ व्यवस्थित और सामंजस्यपूर्ण नहीं होता; वास्तव में, 'समाजों के कई आन्तरिक तनाव और टकराव होते हैं'।

दूसरा, बाज़ारों और शिक्षा की पड़ताल करते हुए, मदान एक अत्यन्त सूक्ष्म तर्क लेकर आते हैं। वे कार्ल पोलान्यी का हवाला देते हैं, और हमें उन तीन तरीकों की याद दिलाते हैं जिनसे वस्तुओं और सेवाओं का विभिन्न समाजों में विनिमय हो सकता है। ये तीन तरीके हैं, पारस्परिकता, पुनर्वितरण और कमॉडीफिकेशन। हमारे समय में, जब हम पण्य वस्तुओं (कॅमॉडिटी) के विनिमय की दिशा में आगे बढ़ चुके हैं, और पैसा हर वस्तु का माप बन गया लगता है, मदान पोल्यानी की सामाजिक सम्बन्धों की 'डिसएम्बेडिंग' की अवधारणा को याद करते हैं। आश्चर्य की बात नहीं है कि शिक्षा का क्षेत्र 'डिसएम्बेडिंग' और कमॉडिटी-वस्तु-विनिमय की इस प्रक्रिया से मुक्त नहीं हो सकता। मदान इसके फायदों से इनकार नहीं करते। उदाहरण के लिए, इन दिनों ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षा सम्बन्धी विमर्श ने, एक अधिक 'सांस्कृतिक दृष्टिकोण' विकसित करने की खातिर 'साहित्य के गौरवग्रन्थों, धर्मग्रन्थों और कुछ खगोलविद्या' के अध्ययन की खब्त से खुद को मुक्त कर लिया है। उदाहरण के लिए, अब किसी सरकारी कार्यालय का बाबू अपनी बचत से कुछ पैसा खर्च करना चाहता है, अपनी बेटी को किसी इंजीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश दिलाना चाहता है ताकि वह सॉफ्टवेयर इंजीनियर बन सके, पैसे कमा सके, और अपने परिवार के सामाजिक उत्थान में मदद कर सके। यह चीज़ जाति/वर्ग में बँटे स्तरीकृत समाज का एक किस्म का लोकतंत्रीकरण करती है। एक तरह से, इस तरह के कमॉडिटी आधारित वस्तु-विनिमय में सब कुछ बुरा ही नहीं है।

लेकिन मदान चाहते हैं कि उनका पाठक सोच-विचार करे, और इस प्रक्रिया के विभिन्न फलितार्थ देखे। आज जबकि नव्यउदारवाद के इस युग में बाज़ार से परिचालित तर्कणा ने शिक्षा के क्षेत्र का उपनिवेशीकरण शुरू कर दिया है, हम शिक्षा की उन दुकानों के विभिन्न ब्राण्डों की सतत वृद्धि देख रहे हैं जो वास्तविक ज्ञान के रूप में तमाम तरह की तकनीकी-प्रबन्धकीय दक्षताएँ बेच रही हैं, और 'प्लेसमेण्ट और सैलरी पैकेज' के मिथकों से सम्भावित उपभोक्ताओं को सम्मोहित कर रही हैं। और मदान शिक्षा के प्रति इस किस्म के विशुद्ध साधनपरक दृष्टिकोण की सीमाओं को देखने से नहीं चूकते। वे हमें याद दिलाते हैं कि अर्थपूर्ण शिक्षा को हमें आलोचनात्मक प्रश्न उठाने की सामर्थ्य भी प्रदान कर सकना चाहिए। मैं इस पुस्तक से उद्धृत करता हूँ:

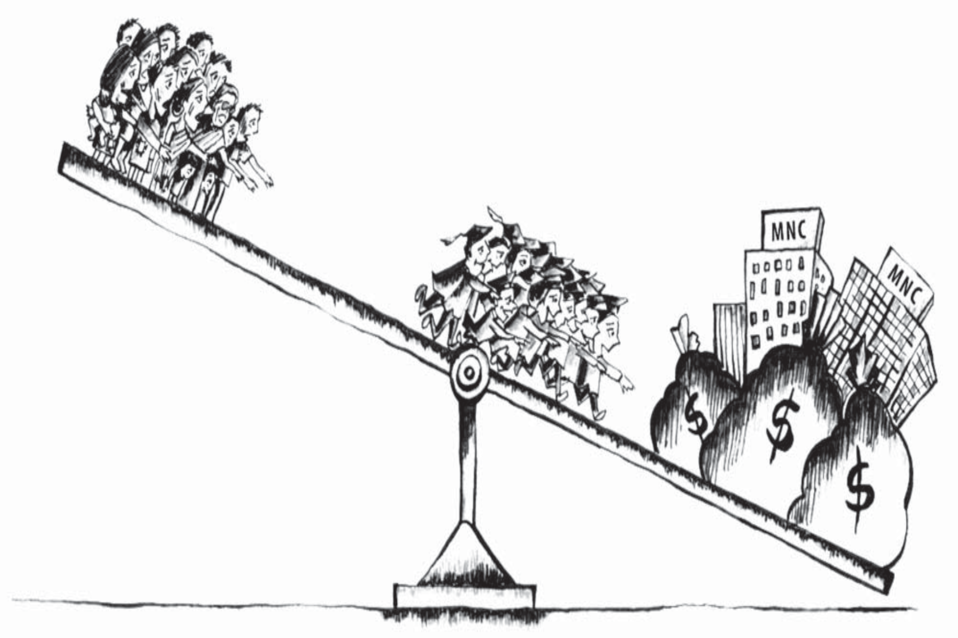

शिक्षा को क्या करना चाहिए, इसका फैसला करने की छूट केवल बाज़ारों को देने में समस्याएँ हैं। यहाँ तक कि यह गरीबों के लिए खतरनाक तक हो सकता है अगर उन्हें यह सिखाया जाता है कि वे आँख मूँदकर वह सब स्वीकार कर लें जो सम्पन्न और शक्तिशाली लोग कर रहे हैं और वे उन पर सवाल उठाना नहीं सीखते। एक महत्त्वपूर्ण चीज़ जिसमें कई हिन्दुस्तानी विश्वास करते हैं और जो हमें सीखना चाहिए, वह यह है कि गलत कामों का किस तरह विरोध किया जाए और किस तरह न्याय और निष्पक्ष व्यवहार के लिए दबाव डाला जाए। यह भी एक ऐसी चीज़ है जो ज़्यादातर ताकतवर लोगों को (हालाँकि सभी को नहीं) सुविधाजनक लग सकती है। शिक्षा का कॅमॉडीफिकेशन इस तरह कई महत्वपूर्ण सवाल खड़े कर सकता है। (पृ. 59-60)

इसी तरह, यह भी उतना ही खतरनाक होगा, अगर हम सांस्कृतिक कॅमॉडीफिकेशन को यह छूट दे देते हैं कि वह शिक्षक को एक ‘दुकानदार’ और छात्रों को उनके ग्राहक में बदल दे। यह इस बात को भूल जाने जैसा होगा कि शिक्षक बुनियादी तौर पर ऐसे ‘बौद्धिक और चिन्तक हैं जो दुनिया की व्याख्या करने में या उसके बारे में सृजनात्मक ढंग से सोचने में मदद करते हैं’।

तीसरा, औपचारिक संगठनों में तार्किक-वैधानिक सत्ता की एक विधि के रूप में नौकरशाही की मैक्स वेबर की अवधारणा को याद करते हुए,

मदान इस बात का बहुत अच्छी तरह विश्लेषण करते हैं कि किस तरह नौकरशाही संरचना का यह रूप हमारे समय में स्कूलों की रोज़मर्रा गतिविधियों को आकार देता है। वास्तव में, आधुनिक स्कूल उस ढंग से काम नहीं कर सकते जिस तरह 10-20 छात्रों वाले गुरुकुल किया करते थे। जब हमारे पास, मसलन, 1000 छात्रों वाला स्कूल हो, तो हमें किसी-न-किसी तरह की नौकरशाही संरचना की ज़रूरत होती है। हमें 'स्पष्ट नियमों' की दरकार होती है; हमारे लिए ज़रूरी होता है कि हम काम को 'छोटी-छोटी इकाइयों में विभाजित करें; या फिर हमें किसी-न-किसी तरह के 'नियमितीकरण' की, 'निर्वैयक्तिकता' और 'सोपानक्रम' की ज़रूरत होती है।

हालाँकि, वे वेबर की व्यथा को - नौकरशाही के 'लौह पिंजरे' में अन्तर्निहित 'निर्वैयक्तीकरण' और 'अलगाव' के अनुभव को - लेकर भी उतने ही सजग हैं । स्कूलों के अतिशय नौकरशाहीकरण की सीमाओं को समझने के लिए मदान के अन्तर्दृष्टिपूर्ण पर्यवेक्षणों और चिन्तन पर ध्यान दें:

छात्रों और शिक्षकों की कई पीढ़ियाँ उन नियमों और निर्देशों की जकड़ में छटपटाती रही हैं जो उनकी भावनाओं और सहज प्रवृत्तियों को कुचलती प्रतीत होती हैं। मसलन, पूरे दिन को आठ पीरियडों में विभाजित करने की प्रणाली जिसके तहत हर पीरियड अलग-अलग विषयों के लिए निर्धारित होता है। इस प्रणाली के कई फायदे हैं, जैसे कि इससे तमाम विषयों को समेटा जाना सुनिश्चित होता है और छात्र सारे दिन एक ही विषय में फँसे नहीं रहते। लेकिन ऐसे भी दिन होते हैं जब कोई कक्षा बहुत सुन्दर तरीके से चल रही होती है और किसी विषय को लेकर ज़बरदस्त उत्साह पैदा हो रहा होता है, और तभी पीरियड समाप्त होने का ऐलान करती घण्टी बज उठती है और आपको कुछ और पढ़ने के लिए तैयार हो जाना पड़ता है। ऐसे में यह सोचना पड़ता है कि यह औपचारिक व्यवस्था एक अच्छी शिक्षा में मदद करती है या उसमें बाधा डालती है। (पृ.97)

चिन्तन का आग्रह

मुझे लगता है कि देखने के इसी ढंग के चलते मदान अपने पाठकों से इवान इलीच और मिशेल फूको जैसों से बातचीत करने का आग्रह करते हैं। स्कूल जिस तरीके से काम करते हैं और मनुष्य के दिमाग को अनुकूलित करते हैं और हमारे मानसिक क्षितिज को परिसीमित करते हैं, उसके खिलाफ इवान इलीच ने सशक्त तर्क दिए थे और 'डिस्कूलिंग' सोसायटी की वकालत की थी। और फूको हमें उस 'अनुशासन' और 'निगरानी' की याद दिलाते हैं जिनके माध्यम से स्कूल - जेलों की भाँति - 'आज्ञाकारी'

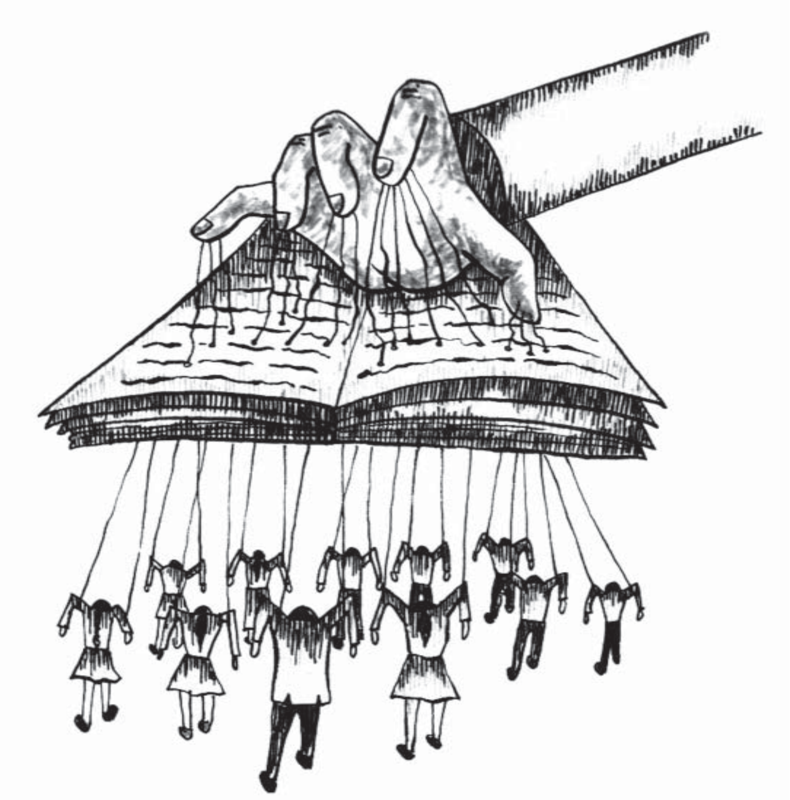

शरीर और दिमाग गढ़ते हैं। वास्तव में, मदान का इरादा, जिस हद तक मैं समझ सका हूँ, तैयारशुदा समाधान उपलब्ध कराना नहीं है। इसकी बजाय, एक संवेदनशील शिक्षाशास्त्री की तरह वे पाठकों से सोचने, चिन्तन करने, यहाँ तक कि द्वैध के क्षेत्र में प्रवेश करने तक का आग्रह करते हैं। जब वे इस बात को पुस्तक की प्रस्तावना में दोटूक ढंग से स्पष्ट करते हैं तो एकदम सही होते हैं:

मैंने हर समस्या का महज़ कोई एक सर्वश्रेष्ठ समाधान पाने पर बहुत ज़्यादा बल नहीं दिया है। उस पाठक के लिए जो लोगों को यह कहते हुए सुनने का अभ्यस्त है कि उनके पास हर चीज़ का उचित समाधान है, यह लेखन की परेशान कर देने वाली शैली प्रतीत हो सकती है। लेकिन मुझे लगता है कि दुनिया को देखने के अनेक ढंग प्रस्तुत करना दीर्घकालिक स्तर पर अधिक सहायक हो सकता है। (पृ.5-6)

मुझे यह कहते हुए कोई हिचकिचाहट नहीं है कि बहुत सावधानीपूर्वक छह अध्यायों में विभाजित यह पुस्तक उन तमाम लोगों को – मेरा मतलब है, अध्यापकों, शिक्षाविदों, शोधकर्ताओं, नीति-निर्माताओं अभिभावकों और युवा छात्रों को – पढ़नी चाहिए जो हमारे समय में शिक्षा की क्रियाविधि से गहरा सरोकार रखते हैं। और जैसा कि हर अच्छी पुस्तक पाठक को लेखक से और अधिक की अपेक्षा करने को प्रेरित करती है, मेरी भी कुछ अपेक्षाएँ हैं। दरअसल, मैं तो प्रोफेसर अमन मदान से आग्रह करूँगा कि वे एक और पुस्तक लिखें, और इस बार वह उपनिवेशवाद और आधुनिकता के साथ हिन्दुस्तान की अनूठी मुठभेड़ पर; वि-उपनिवेशीकरण और जाति, मज़हब और अस्मिता पर नए चिन्तनों; और उनके नतीजे में ज्योतिराव फुले से लेकर डॉ. बी.आर. अम्बेडकर या मोहनदास करमचन्द गाँधी और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के यहाँ से उभरती शिक्षा पर केन्द्रित बहस के बारे में हो।

अविजित पाठक: सन् 1990-2021 के दौरान जे.एन.यू. में समाजशास्त्र के अध्यापक रहे हैं। वे जे.एन.यू. के सबसे लोकप्रिय शिक्षकों में से एक माने जाते थे। उनका शिक्षा पर गहरा अध्ययन है और आधुनिकता, सामाजिक सिद्धान्त और आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र पर उन्होंने विस्तार से लिखा है। अपनी पुस्तक *शिक्षा और नैतिक मूल्यों की खोज* में आज के समय में किस तरह की शिक्षा की ज़रूरत है, उस पर उन्होंने गहरा विचार किया है।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: मदन सोनी: आलोचना के क्षेत्र में सक्रिय वरिष्ठ हिन्दी लेखक व अनुवादक। इनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हैं। इन्होंने उम्बर्तो एको के उपन्यास *द नेम ऑफ दि रोज़*, डैन ब्राउन के उपन्यास *दि द विंची कोड* और युवाल नोआ हरारी की किताब *सेपियन्स: अ ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ ह्यूमनकाइंड* समेत अनेक पुस्तकों के अनुवाद किए हैं।

सभी चित्र किताब *एजुकेशन एण्ड मॉडर्निटी: सम सोश्योलॉजिकल पर्सपेक्टिव* से साभार।

लेख में आए सभी उद्धरण अँग्रेज़ी शीर्षक *एजुकेशन एण्ड मॉडर्निटी: सम सोश्योलॉजिकल पर्सपेक्टिव* से लिए गए हैं।

एजुकेशन एण्ड मॉडर्निटी: सम सोश्योलॉजिकल पर्सपेक्टिव, लेखक: अमन मदान, सन् 2019 में *एकलव्य फाउंडेशन,* भोपाल द्वारा प्रकाशित, पेज: 118. यह पुस्तक *शिक्षा और आधुनिकता - कुछ समाजशास्त्रीय नज़रिये* नाम से हिन्दी में भी उपलब्ध है।

भरहुत, मथुरा और अजन्ता
शिक्षण की कुछ छवियाँ

सी.एन. सुब्रह्मण्यम्

विश्व की सबसे पुरानी स्कूलनुमा संस्थाओं के बारे में हमें सुमेरिया के चार हज़ार साल पुराने शहरों से जानकारी मिलती है। उन्हें 'तख्तीघर' या 'एडुब्बा' कहा जाता था क्योंकि वहाँ गीली मिट्टी की छोटी तख्तियों पर पढ़ना-लिखना सिखाया जाता था। ऐसी कई पाठशालाएँ पुरातात्विक उत्खनन से उजागर हुई हैं (चित्र-1 व 2)। इतिहासकारों ने उनमें अपनाई गई पढ़ाने की विधि, पाठ्यक्रम, पाठ्यवस्तु वगैरह पर भी रोशनी डाली है। यहाँ पते की बात यह है कि इन शालाओं में लिपिक तैयार किए जाते थे जो उस शहरी सभ्यता का तमाम लेखा-जोखा, मिथक-पुराण, इतिहास, दस्तावेज़ीकरण वगैरह सँभालते थे। उनकी बड़ी माँग थी और आदर-सम्मान भी था। यानी

चित्र-1: *सुमेरिया के एक प्राचीन स्कूल के अवशेष*

शालाओं की स्थापना एक विशिष्ट ज्ञान के हस्तान्तरण के लिए हुई थी। ये सभी लोगों के लिए नहीं थीं; शालाएँ केवल उनके लिए थीं जो लिपिक बनना चाहते थे और उसके लिए कई साल तैयारी में लगाने की कुव्वत रखते थे। शिक्षा को हमारी जैसी स्कूली शिक्षा के रूप में नहीं देखा जाता था, जो सबके लिए एक सार्वभौमिक ज़रूरत हो। शायद बाकी लोग अपनी ज़रूरत की बातें अपने बुज़ुर्गों के साथ काम करते-करते सीख जाते थे। जब कभी हम औपचारिक शिक्षण की बात करेंगे तो हमें यह याद रखना होगा कि बीती सहस्त्राब्दियों में यह कुछ विशिष्ट ज्ञान के लिए ही उपयुक्त था, जो काम करते-करते नहीं सीखा जा सकता था, और सन्दर्भहीन वातावरण में खास तरीके से सीखना पड़ता था।

भारत में सम्भवतः हड़प्पा संस्कृति के शहरों में ऐसी परिस्थितियाँ उपलब्ध थीं, मगर हमें यह पता नहीं है कि उसमें पढ़ना-लिखना कितना प्रचलित था और क्या उसके लिए विशिष्ट प्रशिक्षण की ज़रूरत थी। बहरहाल, हमें औपचारिक शिक्षा के बारे में पहली बार वैदिक साहित्य में उल्लेख मिलता है। वेद और उनसे सम्बन्धित क्रियाकलाप और साहित्य ऋग्वेद के समय से ही विशिष्ट ज्ञान बन चुके थे, जिन्हें किसी गुरु से विधिवत सीखना पड़ता था। वैदिक, बौद्ध और प्रारम्भिक संस्कृत गैर-धार्मिक साहित्य में हमें गुरुओं और शिष्यों के बारे में उल्लेख मिलते हैं।

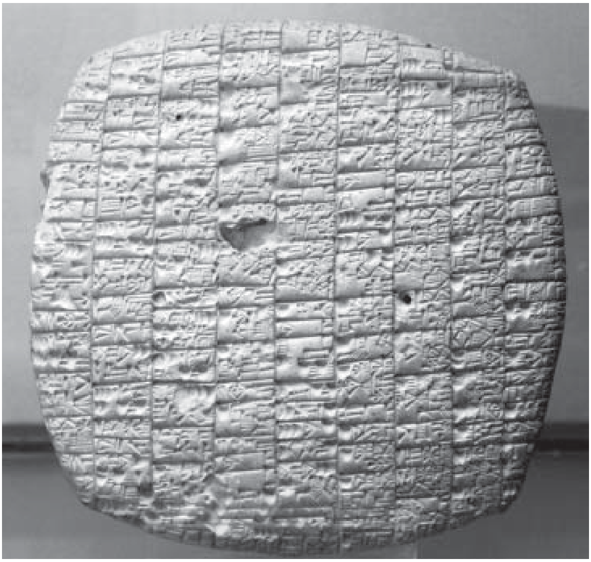

चित्र-2: *सुमेरिया के 'तख्तीघर' में मिली मिट्टी की छोटी तख्ती जिस पर सुमेरियन भाषा में कुछ लिखा गया है। सुमेरियन स्कूलों में बच्चों को सिखाने के लिए इन तख्तियों का इस्तेमाल किया जाता था।*

पाणिनि (पाँचवीं सदी ईपू) के व्याकरण और उनके टीकाकार पतंजलि (दूसरी सदी ईपू) कई रोचक शब्दों का विवरण देते हैं। व्याकरण के नियमों का उल्लेख करते-करते पाणिनि गुरुजी से नज़र चुराने वाले शिष्यों की बात करते हैं। उस पर पतंजलि व्याख्या करते हुए कहते हैं, "शिष्य गुरु से छुपता है, यह सोचते हुए कि 'अगर उपाध्याय मुझे देख लेंगे तो निश्चित ही कोई काम करवाएँगे या फिर डाँट लगाएँगे।' यह सोचकर वह मानसिक रूप से भी विमुख हो जाता है।"[1] एक उदाहरण में पाणिनि अध्ययन में हारने वालों के लिए 'अध्ययनात् पराजयते' का उल्लेख करते हैं। इसकी व्याख्या करते हुए पतंजलि कहते हैं कि छात्र समझ लेता है कि अध्ययन दुखदायी है और याद रखना कठिन है और गुरुओं के निकट जाना आसान नहीं है – "दुःखमध्ययनं दुर्धरं च गुरवश्च दुरुपचारा।"[2] ये हारने वाले फिर ड्रॉप आउट भी हो जाते थे। ड्रॉप आउट के लिए पाणिनि एक विचित्र शब्द का उपयोग करते हैं – 'खट्वारूढ़', यानी खटिए पर चढ़ने वाला। इसकी व्याख्या करते हुए पतंजलि बताते हैं कि विधिवत अध्ययन के बाद ही गुरु की अनुमति से छात्र खटिए पर चढ़कर सोता है (वैसे अध्ययनरत ब्रह्मचारियों को पलंग पर सोना मना था)। अगर वह बीच में ही अध्ययन छोड़ देता है तो वह 'खटिए पर चढ़ा पतित' कहलाएगा।[3]

ज़ाहिर है, विधिवत वैदिक अध्ययन न आसान था और न ही रोचक। इस पृष्ठभूमि में हम कुछ प्रारम्भिक शिल्पपटलों को देखेंगे। मध्य प्रदेश की भरहुत नामक जगह पर एक विशाल स्तूप के खण्डहर हैं, जिनमें अनेक शिल्पपटल मिले। आम तौर पर माना जाता है कि यह 125 ईसा पूर्व के आसपास बने थे। अलेक्ज़ेंडर कन्निंघम[4] इन शिल्पों को कलकत्ता ले गए; वहाँ वे संग्रहालय में संरक्षित हैं। इन्हीं शिल्पपटलों में से एक वह भी है जो मेरी जानकारी में इस उपमहाद्वीप का सबसे पुराना शिक्षण का चित्र है।

एक पेड़ के पास ऊँचे आसन पर एक जटाधारी गुरु बैठे हैं (चित्र-3)। उनके सामने चार शिष्य हैं, जिनके

पतंजलि महाभाष्य, एफ कीलहॉर्न (सम्पा.), व्याकरण महाभाष्य ऑफ पतंजलि, खण्ड 1, बॉम्बे, 1880 के निम्न सूत्र:

[1] पाणिनि सूत्र 1.4.28; पेज 329

[2] पाणिनि सूत्र 1.4.26; पेज 328

[3] पाणिनि सूत्र 2.1.26; पेज 384

[4] अलेक्ज़ेंडर कन्निंघम औपनिवेशिक भारत के पहले पुरातात्विक सर्वेक्षक थे। ह्वेन त्सांग द्वारा वर्णित अनेक जगहों का सर्वेक्षण, उनकी खुदाई और इनकी रपटें बनाने का काम कन्निंघम ने ही किया था।

बाल भी लम्बे हैं – तीन ने जूड़े बाँधे हैं और एक ने अपने बालों को खुला छोड़ा है। गुरु के शरीर पर कोई वस्त्र नहीं दिख रहा है। गुरु की मुद्रा कुछ कहने या समझाने की है, यह उनके दाएँ हाथ और उँगलियों के इशारे से समझ आता है। उल्लेखनीय यह है कि शिष्य उनकी ओर नहीं देख रहे हैं पर झुककर कुछ लिख रहे हैं। शायद वे गुरु की कही बातों को लिपिबद्ध कर रहे हैं। कन्निंघम ने सम्भवतः शिष्यों की शारीरिक बनावट को देखकर यह माना कि वे लड़कियाँ हैं। उनका अनुमान किस हद तक सही है, यह कहना कठिन है। भरहुत स्तूप के शिल्पों की एक विशेषता है कि इन पर इनके शीर्षक प्राकृत भाषा और ब्राह्मी लिपि में दर्ज किए गए हैं। इस पटल पर भी एक विवरण खुदा हुआ है, जिस पर लिखा है – "दीघतपसिसिसे अनुससति", यानी, 'दीर्घतपस शिष्यों को सिखा रहे हैं' (अनुशासित कर रहे हैं)। लगभग यही शब्दावली तैत्तिरीय उपनिषद् के प्रसिद्ध 'शिक्षावली' अध्याय में भी है – "वेदमनूच्य आचार्यः अन्तेवासिनम् अनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर।..." (वेद सिखाने के बाद आचार्य शिष्यों को सिखा रहे हैं – सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो...)। पर दीर्घतपस वेद सिखाने वाले आचार्य नहीं थे। बौद्ध साहित्य के अनुसार वे निर्ग्रन्थ नाटपुत्र (भगवान महावीर) के अनुयायी थे। यह एक गैर-वैदिक

चित्र-3: भरहुत शिल्पपटल – शिष्यों को सिखाते दीर्घतपस।

सम्प्रदाय था जो कठोर शारीरिक तपस्या पर ज़ोर देता था। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार दीर्घतपस एक बार बुद्ध से वाद-विवाद करने गए और संवाद के निर्णय तक पहुँचने से पहले ही लौट गए। इस प्रसंग का इस शिल्पपटल की विषयवस्तु से कोई मेल नहीं दिखता है, अतः सम्भव है कि यह किसी और लुप्त प्रसंग के दीर्घतपस हैं।

जो भी हो, वे वैदिक शिक्षा नहीं दे रहे थे क्योंकि वेद सिखाने में लिखने की प्रथा नहीं है, वेदों को सीखने के लिए सुनकर दोहराना पर्याप्त था। दीर्घतपस जो भी सिखा रहे थे, उसे लिपिबद्ध किया जा रहा था। महिला शिष्यों को शिक्षा देने की बात अगर सही हो तो यह और भी खास बात होगी क्योंकि वेद महिलाओं को नहीं सिखाया जा सकता था। कुल मिलाकर लगता है कि शिक्षण का यह सबसे पुराना चित्रण गैर-वैदिक दार्शनिक परम्परा से जुड़ा हुआ है।

इस पटल को गौर से देखें तो इसमें उपयोग की गई युक्तियाँ स्पष्ट होंगी। कॉम्पोज़ीशन का लगभग आधा हिस्सा गुरुजी के लिए सुरक्षित है और बाकी आधे पर शिष्यों को दिखाया गया है। इससे गुरु की प्राथमिकता उभरती है। उनका आकार तो बड़ा है ही मगर उनकी जटा के कारण उनका सिर और प्रमुखता पा रहा है। गुरु के ठीक सामने पेड़ को बनाकर गुरुपक्ष का वज़न बढ़ाया गया है। गुरु का सिर उठा हुआ है जबकि शिष्यों के सिर झुके हुए हैं। पटल के केन्द्र में एक शिष्य है मगर उसके वज़न को कम करने के लिए हमें केवल उसकी पीठ को दिखाया गया है। उसका सिर, लम्बे बाल और पेड़ का तना मिलकर इस पटल का अक्ष बनता है जिसके इर्द-गिर्द पूरा चित्र घूमता है। यही अक्ष गुरु पक्ष और शिष्य पक्ष को अलग करता है।

मथुरा संग्रहालय में एक और, मगर बहुत फर्क, शिक्षण शिल्प देखने को मिलता है (चित्र-4)। शैली के आधार पर इसे कुषाणकालीन (लगभग पहली सदी ईसवी) बताया जाता है। इसमें भी एक गुरु शिष्यों को शिक्षा दे रहे हैं।

इस शिल्प में गुरु छाता लेकर खड़े हैं और शिष्यों को कुछ सुना रहे हैं। सामने लगभग दस शिष्य उनकी ओर मुँह करके देखते हुए बैठे हैं। उनके आकार से लगता है कि वे सब छोटे बच्चे हैं – लेकिन सभी पगड़ी बाँधे हैं, जो उच्च कुल का परिचायक है। गुरु और शिष्य, दोनों कपड़े पहने हैं, गुरुजी की धोती और उत्तरीय पर विशेष ध्यान जाता है। गुरुजी सम्पन्न थे, यह उनकी तोंद से भी दिखता है। पूरे कॉम्पोज़ीशन में यह तोंद एक केन्द्रीय भूमिका निभा रही है। शिष्य तीन कतारों में बैठे हैं। शायद उनसे अपेक्षा थी कि वे एक ही मुद्रा में लम्बे समय तक बैठकर पाठ सुनें या दोहराएँ। इसलिए उनके पैरों से लेकर

चित्र-4: गुरु और शिष्य, कुषाणकालीन (लगभग पहली सदी ईसवी), मथुरा संग्रहालय

पीठ तक एक पट्टी बँधी है, जिसे बाद में 'योग पट्ट' कहा जाता था। इसे प्रायः ऋषि-मुनि ध्यान की अवस्था में बाँधते थे।

भरहुत पटल के समान इस पटल का भी लगभग आधा हिस्सा गुरुजी को समर्पित है। इस पटल में पेड़ की भूमिका छाता निभा रहा है – यानी गुरुजी के कद को और उठाने में। यहाँ छाते का और भी मतलब हो सकता है। 'छात्र' शब्द की व्याख्या करते हुए पतंजलि कहते हैं कि जो गुरु की छत्र-छाया में संरक्षित है, वह छात्र है। वे कहते हैं, "गुरु छाता हैं। गुरु द्वारा शिष्य छाते की तरह संरक्षित है और शिष्य द्वारा गुरु छाते की तरह संरक्षित है" (गुरुश्छत्रम्। गुरुणा शिष्यश्छत्रवच्छाद्यः शिष्येण च गुरुश्छत्रवत्परिपाल्यः)।[5] छाता, गुरु और शिष्य के रिश्ते को ठीक वैसे ही दर्शाता है जैसे राजा के सिर पर छाता प्रजा और राजा के रिश्ते को दर्शाता है (वैसे शिल्पों में राजा के छाते और पण्डितजी के छाते में अन्तर स्पष्ट रहता है – राजा के छाते में आरी वाले चक्र का आभास मिलता है)।

[5] पतंजलि महाभाष्य, पाणिनी सूत्र 4.4.62; एफ कीलहॉर्न (सम्पा.), व्याकरण महाभाष्य ऑफ पतंजलि, खण्ड 2, बॉम्बे, 1883, पेज 333

पटल में गुरु पक्ष और छात्र पक्ष के बीच कोई उभरा हुआ अक्ष नहीं है बल्कि एक खाई रूपी अक्ष है। उस खाई के समानान्तर छाता एक तिरछा अक्ष भी बनाता है।

भरहुत पटल के विपरीत मथुरा पटल में छात्रों या शिक्षक के हाथ में कोई पुस्तक या कलम नहीं है। शिक्षण का कारोबार मौखिक हो रहा है। गुरुजी का खड़ा होना भी महत्व रखता है। हो सकता है कि यहाँ छात्रों की संख्या अधिक है (वे कई कतारों में बैठे हैं)। सब पर नज़र रहे और सबको नज़र आए इसलिए गुरुजी को खड़ा होकर सिखाना पड़ रहा है। इन सब बातों से लगता है कि यह किसी वैदिक पाठशाला का चित्रण है।

कुछ शताब्दी आगे चलते हैं, और 460 ईसवी के महाराष्ट्र के अजन्ता पहुँचते हैं।

एक ऊँचे मण्डप में कक्षा लगी है जिसके केन्द्र में बालक सिद्धार्थ हैं (चित्र-5)। उनके दाएँ एक लड़की है और बाएँ खम्भे से आधे छिपे गुरु हैं। आगे की ओर दो छात्र बैठे हुए कुछ पढ़ रहे हैं। सिद्धार्थ एक टोपी और कुर्ता जैसा कुछ पहने हुए हैं। मण्डप के नीचे बालक सिद्धार्थ तीरन्दाज़ी

चित्र-5: अजन्ता की गुफा नं 16 में शिक्षा प्राप्त करते सिद्धार्थ गौतम (बुद्ध) का चित्र बना है। यह उसका लाइन स्केच है।

का अभ्यास कर रहे हैं। शायद उनके गुरु सामने बैठे हैं और दो साथी देख रहे हैं। सभी लोग केवल धोती पहने हैं, कमर के ऊपर कुछ धारण नहीं किया हुआ है।

अगर हम पहले दो चित्रों से इसकी तुलना करें तो बहुत-से फर्क दिखेंगे। पहली बात तो यह है कि इस चित्र में गुरुजी की प्रधानता नहीं है। या तो उन्हें एक कोने में खम्भे के पीछे छुपाया गया है, या फिर वे पीठ हमारी तरफ करके एक कोने में बैठे हैं। दूसरी बात यह है कि सब अपने-अपने तरीके से पढ़ रहे हैं, गुरुजी की ओर खास देख भी नहीं रहे हैं। ज़ाहिर है कि यह चित्र सिद्धार्थ (भविष्य के बुद्ध) के महिमा मण्डन के लिए बनाया गया है इसलिए कुछ हद तक स्वाभाविक है कि इसमें गुरुजी को महत्व कम ही दिया जाएगा। मगर इसमें शिक्षण का एक नया दर्शन दिखता है, जो कुछ हद तक भरहुत शिल्प में भी नज़र आया था।

हम पहले यह देखें कि साहित्य में सिद्धार्थ के शिक्षण के बारे में क्या कहा गया है, तो इस नए दर्शन का कुछ और उद्‌घाटन होगा। अश्वघोष की लिखी 'बुद्धचरित' गौतम बुद्ध की सबसे प्राचीन जीवनी है, जिसे पहली सदी ईसवी में रचा गया था। यह संस्कृत के प्रारम्भिक काव्यों में से एक है। इसमें अश्वघोष केवल यह कहते हैं कि बुद्ध अपने कुल-योग्य सभी बातें बहुत तेज़ी-से सीख गए जिसे सीखने में बाकी लोग सालों लगा देते थे। अश्वघोष ने जब कुल-आधारित शिक्षा की बात की थी तब शायद उनका आशय तीरन्दाज़ी और युद्ध कला से भी रहा होगा जो क्षत्रियों के लिए ज़रूरी थे। सिद्धार्थ की पाठ्यचर्या में ग्रन्थों का अध्ययन और तीरन्दाज़ी, दोनों समान रूप से शामिल थे। इसके बाद रची गई जीवनियों में बुद्ध को एक अतिमानवीय दर्जा देने का प्रयास है और बहुत-सी चमत्कारी बातें जोड़ी गई हैं। इनके अनुसार सिद्धार्थ का शिक्षक एक ब्राह्मण था। मगर शिक्षा शुरू होते ही सिद्धार्थ ने सभी प्रकार की लिपियों की जानकारी प्रदर्शित की। गुरुजी के पास उन्हें पढ़ाने के लिए कुछ नहीं था। शिक्षा के बाद एक प्रतियोगिता हुई जिसमें सिद्धार्थ ने एक तीर से सात ताड़ के पेड़ों को चीरते हुए निशाने पर वार किया।

इस प्रसंग में यह विचार निहित है कि सिद्धार्थ स्वयं ही ज्ञानवान थे, उन्हें सिखाने की ज़रूरत नहीं थी, फिर भी उन्होंने ग्रन्थों का अध्ययन किया और तीरन्दाज़ी का अभ्यास किया।

इस चित्र में सभी छात्र-छात्राएँ ग्रन्थों की मदद से खुद अध्ययन कर रहे हैं और गुरुजी केवल एक कोने में मौजूद हैं। दूसरे प्रसंग में सिद्धार्थ किसी को देखकर तीर नहीं चला रहे हैं बल्कि खुद अपने प्रयास से तीर चलाना सीख रहे हैं या प्रस्तुत कर रहे हैं।

अब एक मज़ेदार कक्षा का चित्र देखेंगे जो कि अजन्ता की ही गुफा नं 2 में है। यह वास्तव में एक शिल्पपटल है जो हारिति और पंचिक के विशाल शिल्प (चित्र-6) के आसन पर खुदा हुआ है (चित्र-7)। हारिति और पंचिक उन दिनों बच्चों के रखवाले देवी और देवता माने जाते थे।

पटल के दाएँ सिरे पर गुरुजी एक ऊँचे आसन पर बैठे हैं। गुरुजी कुछ भारी-भरकम हैं और थोड़ी तोंद भी निकली हुई है, मथुरा वाले गुरुजी की तरह। पर उनका खास परिचय तो उनकी लम्बी छड़ी है। दाएँ हाथ में थामी हुई छड़ी बच्चों की गलतियों का इन्तज़ार कर रही है। नीचे तीन बच्चे बैठे हुए हैं और उनके हाथों में तख्तियाँ हैं जिन पर वे कुछ लिख रहे हैं। उल्लेखनीय है कि यहाँ भी केवल श्रवण आधारित शिक्षा नहीं है बल्कि लिखने-पढ़ने पर ज़ोर है। पहले दो बच्चे तो तल्लीनता के साथ लिख रहे हैं मगर तीसरा बच्चा कुछ 'बोर-सा' हो रहा है। वह अपनी तख्ती को ढीला छोड़कर सामने की ओर देख रहा है। उसके पीछे एक चौथा बच्चा है जो उठ खड़ा हुआ है और अपने एक और साथी के बुलावे पर वहाँ से खिसकने की मुद्रा में है। पटल के बाईं ओर दो बकरे आकर्षण का केन्द्र

चित्र-6: अजन्ता की गुफा नं 2 में हारिति और पंचिक।

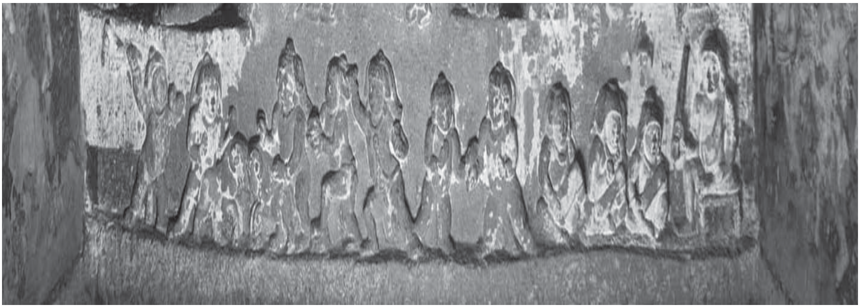

चित्र-7: अजन्ता की गुफा नं 2 के उसी शिल्प के आसन के हिस्से का डीटेल।

बने हुए हैं। दो बच्चे उन पर सवारी करने की कोशिश कर रहे हैं और तीन और बच्चे उन्हें उकसा रहे हैं। शायद वे अपनी बारी का भी इन्तज़ार कर रहे हैं। इसी मज़े में भाग लेने के लिए बच्चे कक्षा से धीरे-धीरे खिसक रहे हैं।

कक्षा की नीरसता और बाहरी दुनिया की मस्ती की दो विपरीत स्थितियों को शायद ही इससे बेहतर किसी कलाकृति में दर्शाया गया हो। बच्चे कुल दस हैं तो सांख्यिकी का उपयोग करने का लालच हो जाता है। दस में से केवल दो या ज़्यादा-से-ज़्यादा तीन बच्चे शिक्षा में रुचि ले रहे हैं। बाकी आठ उस शिक्षा से विमुख हो जाते हैं। बाहरी दुनिया इतनी रंगीन और मस्ती भरी जो है। बाहरी वास्तविक दुनिया से सीखने की बजाय उससे विमुख कर देने वाली शिक्षा भला किसे भाए!

औपचारिक शिक्षा की नीरसता खुद एक छन्नी का काम करती है। इसमें दस में से आठ बच्चे तो ड्रॉप आउट हो जाते हैं और बस दो-तीन की नैया पार हो पाती है। भारत सरकार के आँकड़ों के अनुसार आज भी दस में से पाँच बच्चे दस साल की शिक्षा पूरी करने से पहले पुश आउट हो जाते हैं।

समकालीन यूनान से कुछ छवियाँ

अपने उपमहाद्वीप के इन चित्रों पर सोचते-सोचते उसी दौर में यूनान, मिस्र व चीन की शिक्षण-छवियों पर भी मेरा ध्यान गया। उन देशों में किस तरह के चित्रण मिलते हैं। यूनान में लगभग पाँचवीं सदी ईपू में व्यवस्थित विद्यालयों की स्थापना हुई थी। तब केवल अभिजात्य वर्ग के बच्चों को औपचारिक शिक्षा का मौका मिलता था। यूनान में औपचारिक शिक्षा में प्राथमिकता संगीत और खेल को दी जाती थी और काफी बाद में लिखना-पढ़ना महत्वपूर्ण बना। यहाँ एक मृद भाण्ड (मिट्टी के घड़े) पर बने चित्र

को देखें तो उन दिनों के शिक्षण के इन पहलुओं का पता चलेगा (चित्र-8)। इस चित्र में एक ओर एक संगीत शिक्षक अपने छात्र को एक वाद्य यंत्र बजाना सिखा रहे हैं। छात्र और शिक्षक, दोनों कुर्सियों पर बैठे हुए हैं। बीच में शायद वही शिक्षक पढ़ना सिखा रहे हैं और छात्र खड़ा हुआ है। उल्लेखनीय है कि छात्र के पास न कोई किताब है, न लिखने की सामग्री। अन्त में एक व्यक्ति एक लम्बा डण्डा हाथ में लिए एक कुर्सी पर बैठा हुआ है। वह व्यक्ति जो बालक को रोज़ घर से स्कूल लाता था और उसके शिक्षण के दौरान उसे गौर से देखता रहता था और वापस उसे घर ले आता था – यानी पूरे समय वह छात्र की निगरानी रखता था। आम तौर पर वह एक दास होता था। लेकिन बालक के शिक्षण में उसकी भूमिका अहम थी। कहा जाता है कि उसकी भूमिका वास्तविक शिक्षकों से कहीं अधिक थी। शिक्षक तो छात्र को बस गाना-बजाना या पढ़ना-लिखना सिखाते थे। लेकिन यह दास उसकी सभी शैक्षणिक ज़रूरतों पर नज़र रखता था और उसके नैतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। वह लगभग पूरा दिन बालक के साथ ही गुज़ारता था। इस दास को यूनानी भाषा में 'पेडागॉग' कहा जाता था।

***चित्र-8:** डौरिस नामक कलाकार द्वारा एक मिट्टी के कलश पर बनाया गया शिक्षण का चित्र, यूनान, पाँचवीं सदी ईपू।*

यही शब्द आगे जाकर शिक्षण के लिए उपयोग किया जाने लगा – पेडागॉजी (शिक्षण विधि), पेडागॉग (शिक्षक)। यूनानी मूर्तिकला में पेडागॉग के कई मार्मिक चित्रण देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, चित्र-9 को देखें। तीसरी सदी ईसा पूर्व में बने ये टेराकोटा शिल्प यूनानी शिक्षण में दासों की भूमिका को उजागर करते हैं। पहले चित्र में दास एक हाथ पर बच्चे का बस्ता लेकर और दूसरे हाथ से बच्चे का हाथ पकड़कर स्कूल ले जा रहा है। दाहिनी ओर के चित्र में दास सोते हुए बच्चे को कन्धे पर उठाकर और दूसरे हाथ में लालटेन लिए स्कूल जा रहा है (कहा जाता है कि सर्दियों में सुबह अँधेरा होता था, जिसके कारण लालटेन की ज़रूरत थी) और उसके गले से बस्ता लटक रहा है।

मृद भाण्ड चित्रों में एक अभिजात्यता दिखती है जो कि मिट्टी के शिल्पों में नहीं है। इन शिल्पों में शिक्षण में दास पेडागॉगों की भूमिका को बहुत ही प्रेम से और दर्द व सहानुभूति के साथ दर्शाया गया है। जहाँ चित्र में आदर्श पर ज़ोर है वहीं शिल्प में वास्तविकता उभरकर आती है।

ज़ाहिर है कि प्राचीन यूनान में अभिजात्य शिक्षा की एक अलग कल्पना थी जिसमें कला, खेल, साहित्य आदि का बराबर स्थान था। शिक्षण के चित्रों में हमें एक छात्र

चित्र-9: बालकों को स्कूल ले जाते पेडागॉग (टेराकोटा शिल्प)। तीसरी सदी ईसा पूर्व।

और एक शिक्षक ज़्यादा दिखते हैं, एक सामूहिक कक्षा का आभास नहीं मिलता है। लिपि सीखने या साहित्य रटने पर भारतीय परम्परा की तुलना में अपेक्षाकृत कम महत्व दिखता है।

कुछ अनुत्तरित सवाल

शिक्षण के चित्रण से हमें शिक्षा की अलग-अलग कल्पनाओं का आभास तो मिलता ही है, जिसे दोहराने की ज़रूरत नहीं है, लेकिन साथ ही कई सवाल भी उठते हैं जिन पर विचार करना लाभकर होगा। क्या लिपि और ग्रन्थ आधारित शिक्षा कम-से-कम शुरुआत में गैर-ब्राह्मणवादी परम्पराओं से जुड़ी थी? सीखने-सिखाने में शिक्षकों की भूमिका के अलावा स्वाध्याय व प्रायोगिक क्रियाकलापों का क्या स्थान था? शिक्षण में बाहरी अनुशासन और हिंसा (छड़ी) का क्या स्थान बन रहा था? और क्या कक्षा की नीरसता खुद एक सामाजिक छन्नी का काम करने लगी थी? इन सवालों के कुछ जवाब तो इन चित्रों में हैं मगर ये इशारे भर हैं और हम साहित्य व कला के गहन अध्ययन के बाद ही किसी निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं।

सी.एन. सुब्रह्मण्यम्: *एकलव्य* के सामाजिक विज्ञान कार्यक्रम से जुड़े रहे हैं। इतिहास और सम्बन्धित विषयों के बारे में लिखने में खास रुचि।

यह लेख *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित सी.एन. सुब्रह्मण्यम् की किताब *दक्षिण एशियाई कला में सीखना-सिखाना* से साभार। इस लेख का सम्पादित रूप *पाठशाला* पत्रिका के अंक फरवरी, 2019 में प्रकाशित किया गया था।

चित्रों के स्रोत:

चित्र-1 https://serc.carleton.edu/download/images/202200/sumerian_classroom.png

चित्र-2 https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Cuneiform_tablet_impressed_with_cylinder_seal-_balanced_account_of_barley_MET_ME86_11_244.jpg

चित्र-3 https://twitter.com/IndiaHistorypic/status/1434391775553081349/photo/1

चित्र-4 सी.एन. सुब्रह्मण्यम्

चित्र-5 जी याज़दानी व एन पी चक्रवर्ती, *अजन्ता*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, भाग III, 1930, प्लेट नं. 63

चित्र-6 नारायण सान्याल, *इम्मॉर्टल अजन्ता*, भारती बुक स्टॉल, कोलकाता, 1984, पेज 76

चित्र-7,8 https://www.akg-images.co.uk/archive/-2UMDHUWHLC2KT.html

चित्र-9 https://www.beazley.ox.ac.uk/carc/resources/Introduction-to-Greek-Pottery/Keypieces/redfigure/douris

चित्र-10 पहली तस्वीर - वाल्टर्स कला वीथी, बाल्टिमोर (http://www.ipernity.com/doc/laurieannie/24077937); दूसरी तस्वीर - स्टाटलिशेश संग्रहालय, बर्लिन (https://www.periodpaper.com/products/1941-print-greek-sculpture-baby-child-figurines-classical-slave-pedagogue-teach-203621-xhe3-038)

जब पल्लवी बुआ सुल्ताना बनीं

हरजिन्दर सिंह 'लाल्टू'

पल्लव चाचा याद हैं न? अरे वही मीत के चाचा, हैदराबाद वाले। उनकी बहन पल्लवी बुआ तिरुवनन्तपुरम में इसरो में काम करती हैं। इसरो मतलब जहाँ महाकाश में उड़नखटोला भेजने का काम करते हैं। अँग्रेज़ी में इंडियन स्पेस रीसर्च वगैरह कहते हैं न, इसलिए पहले अक्षरों यानी ISR व O से बना इसरो। तो इस बार जब दशहरे की छुट्टी में वो मीत के घर आईं, तो प्रीतो और शबनम चार छलाँगें मारकर उनके घर जा पहुँचे। मीत ने बताया था कि पल्लवी बुआ केले का हलवा लेकर आई हैं, कहते हैं कि बड़ा लज़ीज़ होता है। वैसे भी पल्लव चाचा मज़ेदार कहानियाँ सुनाते हैं तो पल्लवी बुआ भी ज़रूर कहानी सुनाएँगी।

मौसम तो वैसे बाहर खेलने का है, पर केले का हलवा चखने का बड़ा मन कर रहा है। इस बार छुट्टियों में होमवर्क भी कम है। टीचर्स को भी पता है कि दशहरे में मेले-वेले घूमने के बाद बच्चों के पास पढ़ने-लिखने का वक्त कहाँ होता होगा!

जितना सोचा था, पल्लवी बुआ उससे ज़्यादा प्यारी निकलीं। शबनम को तो गोद में उठाकर चूमा। गोद में से ही शबनम ने पूछा, "बुआ, आप भी हमें पल्लव चाचा जैसी कहानी सुनाएँगी?"

पल्लवी बुआ बोलीं, "अरे यार, कहानी-वहानी मुझे कहाँ आती है!"

प्रीतो से रहा नहीं गया, बोली, "हमें क्लास में मैडम ने बताया था कि चन्द्रायन का काम सब वैज्ञानिक आंटियों ने किया था, आप रॉकेट की कहानी बताइए न!"

"अच्छा वो, यहाँ तक खबर पहुँच गई? हाँ, महाकाश-यान यानी स्पेस-विहिकल पर तो मैंने काम किया है। अच्छा चलो, सुनाती हूँ।"

"ये-ए-ए...," मीत ने चीखते हुए ताली बजाई।

"अरे, ज़रा आराम-से बैठो, मुझे सोचने दो।" सब चुप बैठे रहे। पल्लवी बुआ खिड़की से बाहर देख रही थीं, जहाँ हल्की धूप में कदम्ब के पेड़ के पत्ते शरद की हवा में झूम रहे थे।

"चलो, फिर मैं तुम्हें रज़िया सुल्ताना से मिलने की कहानी सुनाती हूँ।"

प्रीतो बोली, "धत्! आप रज़िया सुल्ताना से कैसे मिल सकती हैं, वो

तो एक हज़ार साल पहले दिल्ली की रानी थीं।"

"अरे, यही तो महाकाश में घूमने का मज़ा है, तुम चाहो तो हज़ार साल पहले या आगे चली जा सकती हो।" प्रीतो ने सिर झुका लिया, क्योंकि उसके होंठों पर ना-यकीनी की मुस्कान थी और वह नहीं चाहती थी कि पल्लवी बुआ देख लें।

शबनम ने अचरज से पूछा, "आप रॉकेट में एक हज़ार साल पीछे चली गई थीं? अगर मैं रॉकेट चलाऊँ तो मैं भी जा सकती हूँ?"

"यह तो तुम्हारे रॉकेट पर है, अगर वो ले जाए तो ज़रूर जा सकती हो शब्बो! पर अब तुम चुप होकर यह कहानी सुनो।"

पल्लवी बुआ ने आँखें बन्द कीं। हर कोई चुपचाप इन्तज़ार में था कि वे आगे क्या कहेंगी। सिर्फ प्रीतो अपने मोबाइल फोन पर विकीपीडिया देखने लगी थी कि रज़िया सुल्ताना के बारे में वहाँ क्या जानकारी है। इसी बीच में मीत की मम्मी सबके लिए केले का हलवा ले आईं। पर प्रीतो के अलावा किसी ने मानो देखा ही नहीं। प्रीतो ने चम्मच से हलवा मुँह में डाला। वाह! यह तो वाकई स्वादिष्ट है।

पल्लवी बुआ ने आँखें खोलीं और सामने चाय की प्याली देखी। चाय सिर्फ उनके लिए आई थी। उन्होंने चाय की चुस्की ली और बोलीं, "देखो, रॉकेट में क्या होता है कि एक बटन होता है जिसे दबाकर टाइम में आगे-

पीछे जा सकते हैं, जैसे चाहो तो तुम गाँधीजी से मिल सकते हो या देश के अगले प्रधानमंत्री से मिल सकते हो।"

'चाचा, बुआ, दोनों के एक-जैसे नाम, और दोनों महा गपोड़ी,' प्रीतो ने मन ही मन सोचा, 'चलो, सुनते हैं, क्या कहती हैं।'

"तो, भविष्य में जाने का मेरा कोई मन नहीं था, मुझे हमेशा इतिहास की कहानियाँ अच्छी लगती हैं, इसलिए मैं पीछे की ओर चली।"

मीत की अम्मी भी मुस्कराती हुई बैठ गईं।

पल्लवी बुआ उनकी ओर देखकर जैसे आँखों ही आँखों में कुछ बोलीं और ज़ोर-से हँस पड़ीं।

"तो, मुझे तो पता नहीं था कि मैं कितना पीछे जा रही हूँ। और मेरा रॉकेट वाला जहाज़ भँवर में फँस गया और अचानक मानो ज़मीन से टकराकर खड़ा हो गया।"

शबनम के गले से चीख-सी निकली।

"मैंने जब जहाज़ का दरवाज़ा खोला तो खुद को एक जंगल में पाया। मैं दो-चार कदम ही चल पाई थी कि मुझे कुछ लोगों ने घेर लिया। उनके हाथों में बर्छियाँ थीं। शक्ल से वे सिपाही जैसे लग रहे थे, पर जैसे इतिहास की किताब में से निकल आए हों। सर पर टोपी जैसी पगड़ियाँ, चुस्त पाजामों पर कुर्ते जिन पर अँगोछे बँधे हुए थे। उन्होंने थोड़ी देर मेरी ओर देखा, फिर पता नहीं क्या कानाफूसी की और सब मेरे सामने ज़मीं पर लेटकर कुर्निश करने लगे। पहले तो मैं डर गई, पर उन्हें लेटे हुए देखकर हिम्मत आई और मैंने पूछा, 'तुम लोग कौन हो?' उनमें से एक उठकर खड़ा हुआ और बोला, 'हम अमीर-अल-उमरा जमालुद्दीन याकूत के वफादार सिपाही हैं। मैं इस टुकड़ी का मुखिया गुणवन्त हूँ और ये सब मेरे साथ हैं'।"

"इतना बड़ा नाम?" मीत ने पूछा।

"अरे नहीं, नाम तो बस जमालुद्दीन याकूत था। उसे अमीर-अल-उमरा की पदवी मिली थी, मतलब वह अमीरों का अमीर था।" प्रीतो जानती थी कि किसी को कुछ समझ नहीं आया, पर वो चुप रही।

"तो फिर वे बोले, 'ऐ मलिका-ए-हिन्द, सुल्ताना बखूब अल-दुनिया, गुलाम की गुस्ताखी माफ करें, हमें समझ नहीं आ रहा है कि आप यहाँ इस लोहे की झोपड़ी में क्या कर रही हैं और आपके ये लोहे के घोड़े कहाँ से आए'।"

पल्लवी बुआ दो पल रुकीं और मुस्कराते हुए बोलीं, "मेरे जहाज़ से निकलते ही साथ में दो रोबोट भी निकल पड़े थे न, उन्हीं को देखकर उन्हें लगा कि ये लोहे के घोड़े हैं। और वो रोबोट इधर-उधर घूम रहे थे। उनमें से एक अचानक बोल पड़ा - 'क्या हम इन हमलावरों को खत्म

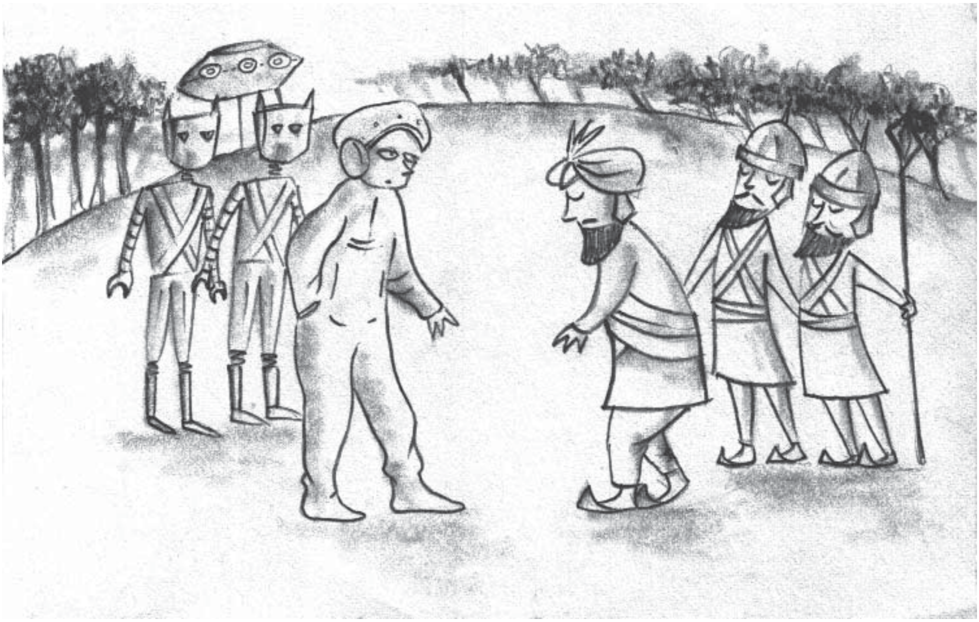

कर दें?’ उसकी बात उन सिपाहियों की समझ में तो नहीं आई, पर वे उसे इस तरह बोलते सुनकर उछलकर खड़े हो गए और घबराकर काँपने लगे। मैंने रोबोट को समझाया कि ‘ये अच्छे सिपाही हैं, इनके साथ हमें लड़ना नहीं है’।”

अब शबनम का ही नहीं, मीत का भी मुँह पूरा खुला हुआ था। प्रीतो का मन हुआ कि अचानक उनके मुँह में उँगली डाल दे, पर वह चुप बैठी रही।

फिर बुआ बोलीं, “मैंने उनसे पूछा कि क्या उन्हें मेरा नाम पता है?”

“गुणवन्त झुककर बन्दगी करते हुए बोला, ‘आपका नाम कौन नहीं जानता मलिका-ए-हिन्द, आप रज़िया सुल्ताना यानी रज़िय्यात-उद्-दुनिया-वा-उद्दीन हैं, समूचे हिन्द की अवाम की सरपरस्त नूर-ए-सल्तनत’।”

“अब धीरे-धीरे मुझे समझ में आया कि उन्होंने मुझे रज़िया सुल्ताना समझ लिया था। मैंने उनसे कहा कि भई मुझे भूख लगी है, चलो कुछ खाते-पीते हैं।”

“‘जो हुक्म मलिका’ कहकर, वे मेरे आगे-पीछे ऐसे खड़े हो गए, जैसे कोई शाही सवारी हो। गुणवन्त एक सफेद घोड़े की लगाम पकड़े खड़ा था कि मैं उस पर बैठ जाऊँ। मैं थोड़ा घबराई, पर मैंने अपने एक रोबोट से कहा, ‘इधर आओ और मुझे घोड़े पर चढ़ाओ।’ रोबोट पास आया तो

गुणवन्त डरकर परे हट गया। मैं घोड़े पर चढ़कर उनके साथ चली। करीब दस मिनटों में ही हम एक शिविर में पहुँचे। मुझे देखकर शिविर के सामने खड़े सभी सिपाही कानाफूसी करने लगे और सलाम करते हुए सावधान की मुद्रा में खड़े हो गए। मैं घोड़े से उतरी और शिविर के अन्दर गई। जाने से पहले अपने दोनों रोबोट से मैं कह गई कि जब तक मैं न बुलाऊँ वो बाहर ही रहें। और अन्दर जाते ही मैंने देखा कि - ओ माई गॉड! वहाँ बिलकुल मेरी शक्ल की एक औरत जवाहरातों से लदी एक सिंहासन पर बैठी थी। उसके साथ नीचे शानदार गलीचे पर तकिए पर पीठ टिकाए एक साँवला आदमी बैठा था। रानी ने मुझे देखा और गुस्साई-सी बोली, 'मुझे मेरे जासूसों से खबर मिली कि मेरे जैसी शक्ल की कोई औरत सुल्ताना बनी घूम रही है। कौन हो तुम? जल्दी बताओ, नहीं तो इसी पल तुम्हारा सर कलम करवा दूँगी।' मैं समझ गई कि यही रज़िया सुल्ताना है और वह साँवला आदमी उसका करीबी दोस्त याकूत है।"

"शिविर में बस हम तीन थे। उनके पास खुली तलवारें पड़ी थीं। एक पल के लिए लगा कि अब तो मैं दुनिया से कूच करने वाली हूँ, यहाँ से ज़िन्दा निकलना नामुमकिन है। मैंने सिर झुकाया और काँपते हुए बोली, 'ऐ

मलिका-ए-हिन्द, मेरी ऐसी कोई मंशा नहीं है कि मैं सुल्ताना बनूँ। मैं किसी और दुनिया से आई हूँ। आप चाहें तो एक मिनट बाहर आकर देखें, मेरे रोबोट आपको सब समझा देंगे'।"

"रज़िया झटके-से उठीं, एक बार याकूत की ओर देखा और शिविर से बाहर आ गईं। मैं और याकूत उसके पीछे आए।"

"रज़िया ने दोनों रोबोट को देखा। मैंने उनसे कहा, 'इनको बतलाओ कि हम कौन हैं और यहाँ कैसे आए हैं'।"

"एक रोबोट बोला, 'हमने इनकी ज़बान सीखने की कोशिश की है। अभी हमारे प्रोसेसर इस पर काम कर रहे हैं। इसलिए हम थोड़ा बहुत ही समझा पाएँगे'।"

"इतना कहकर थोड़ी फारसी, थोड़ी तुर्की में वह रोबोट रज़िया को हमारे वक्त यानी हमारी-तुम्हारी दुनिया के बारे में बताने लगा। कुछ ही पलों में रज़िया ज़ोर-से हँसने लगीं और फिर कहा, 'अच्छा बेवकूफ बनाया है तुम्हारी मालकिन ने हमें। तुम लोग सच कह रहे हो तो मुझे भी दिखाओ कि वो दुनिया कैसी है जिसकी मनगढ़न्त कहानी तुम कह रहे हो'।"

"रोबोट ने मुझसे कहा, 'दीदी, आप कुछ देर यहाँ बैठें, हम इनको इक्कीसवीं सदी दिखा लाते हैं'।"

"मैं घबरा रही थी, पर अब कोई रास्ता तो था नहीं। इधर गर्दन पर तलवार लटकी हुई थी। याकूत ने रज़िया के कानों में कुछ कहा। रज़िया ने तुरन्त हुक्म दिया, 'सब लोग सुनें। मैं थोड़ी देर में वापस आती हूँ, तब तक ये मुहतरमा दिल्ली जाकर सल्तनत सँभालेंगी'।"

"बस, फिर क्या था," कहकर पल्लवी बुआ ने ताली बजाई। "मैं दिल्ली पहुँची और सिंहासन पर जाकर बैठी। पर बाप रे, वहाँ तो हर पल खतरा था। याकूत आकर बताता कि सब अमीर-उमरा तखता पलटने का षड़यन्त्र कर रहे हैं। डर के मारे मुझे रात को नींद न आती थी। पर वो ऐश – ओ हो! जब दरबार लगता तो क्या शानो-शौकत थी।"

"आप तो हर वक्त केले का हलवा खाती होंगी?" शबनम ने पूछा तो बुआ ज़ोर-से हँस पड़ीं। "अरे, तब तो क्या-क्या पकवान मैंने खाए, क्या बताऊँ। बकलावा हलवा, डबल-का-मीठा, क्या नहीं!"

प्रीतो बोल पड़ी, "पर उन्हें 'डबल' किसको कहते हैं, यह तो नहीं पता था!" बुआ ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया।

फिर बुआ बोलीं, "पर आखिर हमें वहाँ से भागना पड़ा। एक सूबेदार ने दिल्ली पर हमला जो कर दिया था। उसी लड़ाई के दौरान रज़िया को लेकर मेरा जहाज़ वापस आ पहुँचा। रज़िया जहाज़ से उतरीं तो देर तक 'तौबा, तौबा' कहती रहीं। उन्हें हमारी

सदी के लोग पसन्द नहीं आए। खैर, फिर पता नहीं वहाँ क्या-क्या हुआ, मैं तो दौड़कर जहाज़ में घुस गई और यह देखो, अब यहाँ बैठी हूँ।"

"तुम्हारे रोबोट कहाँ हैं, हमें भी दिखाओ न?"

"अरे, मुझे क्या पता था कि तुम्हें यह सारी कहानी सुनाऊँगी। अगली बार आऊँगी तो दोनों को साथ लाऊँगी।"

प्रीतो से रहा न गया, "बुआ, आपको तो अन्तरिक्ष विज्ञानी नहीं, दास्तानगो होना चाहिए था।"

पल्लवी बुआ उदास-सी हो गईं। फिर बोलीं, "चलो, मैं नहीं बन पाई तो तुम तो ज़रूर बनना।"

मीत की अम्मी बोल पड़ीं, "वाकई! चलो, अब सब अपने घर जाओ। बुआ को आराम करने दो।"

लौटने से पहले फिर एक बार शबनम पल्लवी बुआ की बाँहों में थी। प्रीतो का भी मन हुआ कि वह भी शबनम की तरह पल्लवी बुआ से लाड़-प्यार करे, पर काश कि वह भी वक्त में पीछे जाकर शबनम जैसी बच्ची हो पाती।

हरजिन्दर सिंह 'लाल्टू': सेंटर फॉर कम्प्यूटेशनल नेचुरल साइंस एंड बायोइन्फॉर्मेटिक्स, आई.आई.आई.टी., हैदराबाद में प्रोफेसर। प्रिंसटन यूनिवर्सिटी, न्यू यॉर्क, यूएसए से पीएच.डी.। सन् 1987-88 में *एकलव्य* के साथ यूजीसी द्वारा स्पेशल टीचर फैलोशिप पर हरदा में रहे। आप हिन्दी में कविता-कहानियाँ भी लिखते हैं।

सभी चित्र: सौम्या मैनन: चित्रकार एवं एनिमेशन फिल्मकार। विभिन्न प्रकाशकों के साथ बच्चों की किताबों एवं पत्रिकाओं के लिए चित्र बनाए हैं। बच्चों के साथ काम करना पसन्द करती हैं।

हमारी नई किताब

दिन भर क्या किया?

लेखन: लाल्टू

चित्र: तविशा सिंह

मूल्य: ₹75

लाल्टू की कविताओं का यह संकलन मुख्य रूप से किशोरों व नव-साक्षरों को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है। संकलित कविताओं की विषयवस्तु में काफी विविधता है ताकि पाठक लाल्टू के रचना-संसार का आस्वाद ले सकें। साथ में युवा कलाकार तविशा सिंह के रेखाचित्र हैं। कविता और चित्र मिलकर अनुभवों का एक नया संसार रचते हैं। इन कविताओं और चित्रों से गुज़रते हुए पाठक की कल्पनाशीलता इसमें न जाने और कितने रंग भरे, कितने नए संसारों की रचना करे!

अपनी प्रति खरीदने के लिए सम्पर्क करें–

एकलव्य फाउंडेशन

जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (मप्र)

फोन: **+91 755 297 7770-71-72;** ईमेल: **pitara@eklavya.in**

www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

एकलव्य

50 YEARS of HSTP

सवालीराम

सवाल: मधुमक्खी के छत्ते के प्रकोष्ठों का आकार षट्कोणीय क्यों होता है?

– प्रक्षाली देसाई, झाबुआ, म.प्र.

जवाब: मधुमक्खी को इन्सान हज़ारों साल से जानता है और उसके शहद का इस्तेमाल भी करता रहा है। भारत की अनेक पाषण युगीन गुफाओं में बने चित्रों में मधुमक्खी के छत्ते के चित्र भी पाए जाते हैं। शायद शहद की चाहत में ही इन्सान की निगाह छत्तों की षट्कोणीय बनावट पर गई होगी।

सरसरी तौर पर देखेंगे तो मधुमक्खी के छत्ते में तीन तरह की मधुमक्खियाँ होती हैं – श्रमिक, रानी और राजा। इनके अलावा छत्ते में कुछ नर मधुमक्खियाँ भी होती हैं जिन्हें ड्रोन कहा जाता है। छत्ते में राजा-रानी प्रजनन करते हैं और श्रमिक छत्ता बनाने, फूलों से रस लाकर छत्ते के कोषों तक पहुँचाने और अण्डे-लार्वा की देखभाल एवं सुरक्षा जैसे काम करते हैं। यहाँ हम प्रमुखत: छत्ता बनाने के बारे में ही चर्चा करेंगे।

मधुमक्खी के छत्ते में मुख्य रूप से षट्कोणीय कक्ष होते हैं जिनका उपयोग दो कामों के लिए किया जाता है, एक – अण्डे, लार्वा एवं शिशु के निवास के लिए और दूसरा – भोजन का भण्डारण करने के लिए।

मधुमक्खी के छत्ते की मोटाई अलग-अलग प्रजातियों पर निर्भर करती है जो 3 इंच से लेकर 8 इंच तक हो सकती है। छत्ते के कक्ष बनाने के लिए श्रमिक मक्खियाँ अपने शरीर में मौजूद मोम ग्रन्थियों से मोम बाहर निकालती हैं। वे इस मोम को अपने

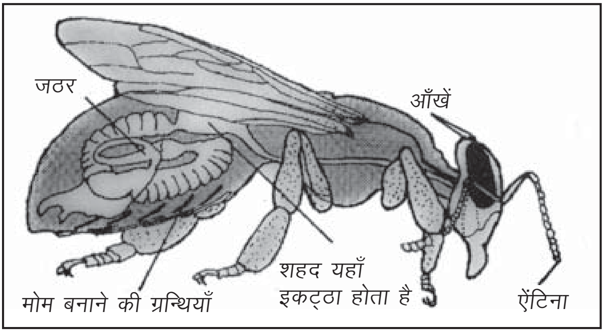

चित्र: इंटरनेट से साभार

पिछले पाँव की मदद से मुँह तक लाती हैं, और फिर इसे जबड़ों से चबाती हैं तब जाकर इससे छत्ते के कोष या कक्ष बनाना शुरू कर पाती हैं।

अब हम अपने सवाल पर लौटते हैं। यह सवाल सभी कीट वैज्ञानिकों एवं जीव विज्ञान के दानिशमन्दों को परेशान करता रहा है कि 'मधुमक्खी के छत्ते के अन्दर बने कोषों का आकार षट्कोणीय ही क्यों होता है?' मधुमक्खी की कोशिकाओं के भीतर ऐसी कौन-सी जानकारी की प्रोग्रामिंग हुई होगी कि वे ऐसे आकार को बना पाती हैं?

विभिन्न आकृतियों की तुलना

यदि पुराने समय की बात करें तो अरस्तू और चार्ल्स डार्विन ने भी इस सवाल पर गहन विचार-विमर्श किया था। ग्रीक देश के एक विद्वान - पप्पस ऑफ एलेक्ज़ेंड्रिया (Pappi Alexenderni) ने प्राथमिक स्तर के अवलोकनों में जो पाया, उसके मुताबिक उन्होंने इस सवाल को गणित और ज्यामिती के नज़रिए से देखने का प्रयास किया।

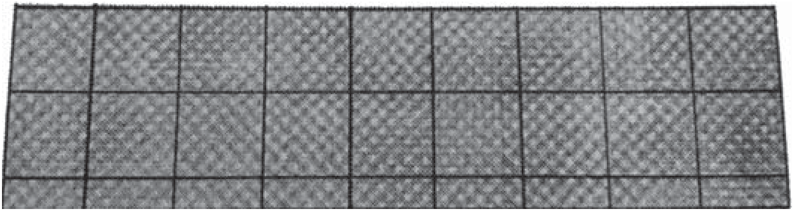

चित्र-1

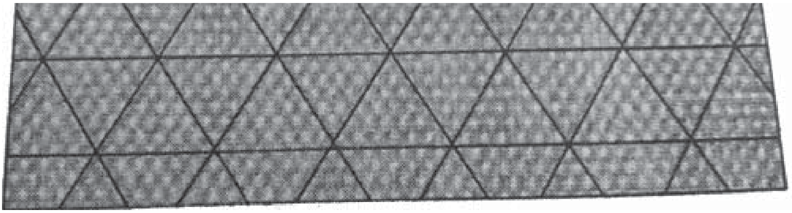

चित्र-2

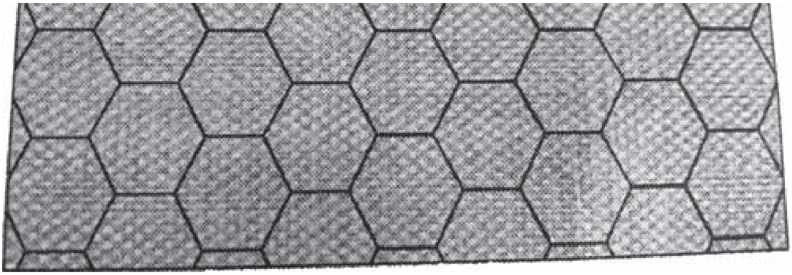

चित्र-3

वैसे भी विज्ञान में हर खोज पहले वाली खोज से आगे का रास्ता खोलती है। बहरहाल, पप्पस ने जो सोचा और लिखा, हम उस पर बात करेंगे। मधुमक्खी छत्ते के लिए वर्गाकार या त्रिभुज आकार को भी पसन्द कर सकती थी पर षट्कोण आकार के चलते उसे कम मोम का इस्तेमाल करते हुए ज़्यादा जगह का फायदा मिलता है। इसे समझने के लिए घर के फर्श पर बिछाई जाने वाली साधारण वर्गाकार टाइल का उदाहरण लेंगे। इसमें भुजाओं की नाप एक-जैसी होती है और प्रत्येक कोना 90 डिग्री कोण का होता है। ऐसी टाइल्स एक के बाद एक बिछाते जाएँ तो देख सकते हैं कि आसपास की दो या तीन टाइल के बीच में कहीं पर भी जगह नहीं छूटती (चित्र-1)।

दूसरा सम्भावित आकार त्रिभुज है। इसमें भी बीच में बिलकुल भी जगह नहीं छूटती (चित्र-2)।

षट्कोण आकार की टाइल में भी जगह नहीं छूटती। समबाहु षट्कोण को उसके पड़ोसी षट्कोण के साथ सटाकर रखा जा सकता है (चित्र-3)।

यहाँ तक पहुँचकर आप भी यह सोचने लगे होंगे कि यह कैसे मान लें कि कोई अन्य आकार काम नहीं करेगा। एक बात और भी है, कोई भी आकृति हो, अगर वह आकार अपने शिरो-बिन्दु के आसपास की सम्पूर्ण जगह को भर देगा, तो वह काम करेगा। शिरो-बिन्दु यानी किसी भी कोने वाली आकृति की कहीं की भी चोटी का बिन्दु (देखिए चित्र-4)। इसमें चार वर्गाकार एक-दूसरे से सटकर जमे हुए हैं, और उनके शिरो-बिन्दु के आसपास 90 डिग्री के कोने सटे हुए हैं। कहीं पर भी खाली जगह नहीं बचती क्योंकि 90 डिग्री का कोण चार बार मिलकर 360 डिग्री बनाएगा।

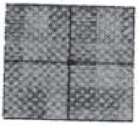
चित्र-4

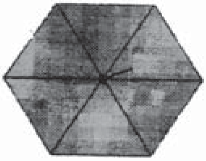
चित्र-5

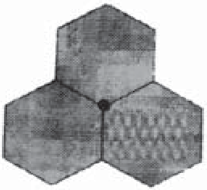
चित्र-6

चित्र-5 को देखिए। इसमें सभी समबाहु त्रिभुज चोटी पर सटाकर रखे हैं। तो छह त्रिभुज जमाने पर 60 डिग्री छह बार यानी फिर 360 डिग्री वाला सम्पूर्ण वृत बन गया।

चित्र-6 में तीन समबाहु षट्कोण एक शिरो बिन्दु पर देखें। प्रत्येक षट्कोण के अन्दर का कोण 120 डिग्री है। ऐसे 120 डिग्री के कोण तीन बार तो 360 डिग्री यहाँ पर भी बन रहा है।

उपरोक्त तीन आकारों के अलावा किसी अन्य आकार का उपयोग मधुमक्खी करेगी तो दो कोषों के बीच जगह रह ही जाएगी। आइए देखें, अगर तीन पंचकोण, तीन सप्तकोण और तीन अष्टकोण को रखकर

चित्र-7: समबाहु पंचकोण में भुजाओं के बीच का कोण 108 डिग्री होता है। समबाहु सप्तकोण और समबाहु अष्टकोण में यह कितना होगा? कैसे पता करेंगे? यह भी जाँच लें कि उनसे चित्र में दिखाई गई आकृतियाँ ही बनेंगी न?

मधुकोष बनाए जाएँ तो क्या होता है (देखिए चित्र-7)।

समबाहु पंचकोण की सभी भुजाएँ आपस में 108 डिग्री का समान कोण बनाती हैं। इसलिए तीन पंचकोण सम्पूर्ण क्षेत्र को पूरी तरह से भर नहीं पा रहे हैं। वैसा ही समबाहु सप्तकोण और अष्टकोण में भी हो रहा है इसलिए शायद इस प्रकार के आकार मधुकोष के लिए योग्य नहीं हैं।

एक तो अगर बीच में जगह छूटी तो वहाँ से मधुमक्खी पर आक्रमण करने वाले जन्तु आसानी-से छत्ते में प्रवेश पा जाएँगे। दूसरी बात, अभियांत्रिकी के हिसाब से देखें तो बीच में छूटी जगह छत्ते के समग्र ढाँचे को कमज़ोर बनाएगी। एक बड़े-से छत्ते में औसतन 10-15 किलो शहद और छत्ते में पल रहीं मधुमक्खियों का वज़न रहता है। ऐसे में, बीच-बीच में छूटी जगह की वजह से छत्ते के टूटकर बिखर जाने की सम्भावना बढ़ जाएगी।

मोम में किफायत

मधुमक्खी के लिए मोम बनाने की प्रक्रिया कुल कार्य ऊर्जा का बहुत ज़्यादा हिस्सा ले लेती है। कुछ श्रमिक मधुमक्खियाँ फूल का रस इकट्ठा करने की बजाय थोड़े समय के लिए अपने शरीर की चार जोड़ी मोम उत्पन्न करने वाली ग्रन्थियों से मोम का स्राव शुरू करती हैं। मोम बनाने वाले श्रमिकों को रस लाने वाली श्रमिक मधुमक्खी लगातार शहद खिलाती रहती है क्योंकि 400 ग्राम मोम बनाने के लिए बहुत अधिक ऊर्जा की खपत होती है, इस वजह से उसे 5-6 किलो शहद खाना पड़ता है। मोम बनाते वक्त मोम बनाने वाली सभी मधुमक्खियाँ एकत्रित होकर गोलाकार में भीड़ बनाकर सट जाती हैं, फिर एक-दूसरे के साथ अपने शरीर को तेज़ी-से कँप-कँपाना शुरू करती हैं। यह कम्पन उनके शरीर के तापमान में बढ़ोत्तरी करता है। इस वजह से उनके शरीर में पेट के

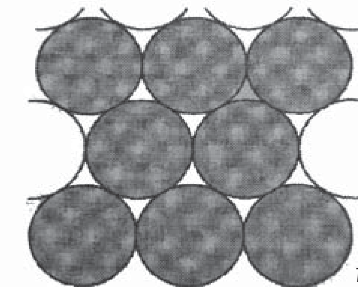

चित्र-8

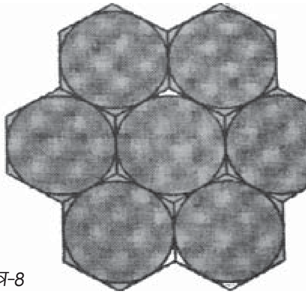

चित्र-9

निचले हिस्से में मौजूद 4 जोड़ी मोम-ग्रन्थियाँ उत्तेजित होकर बारीक-बारीक असंख्य मोम की कतरनें निकालना शुरू करती हैं। ये कतरनें वज़न में बहुत हल्की और अर्ध-पारदर्शक होती हैं। मोम की ऐसी 100 कतरनें इकट्ठी करें तो गेहूँ के दाने जितना मोम प्राप्त होता है। इस तरह मोम उत्पादन के दौरान अपना योगदान देकर कई श्रमिक मधुमक्खियाँ मर भी जाती हैं।

बात को एक बार फिर आकार की ओर लाते हैं। वृत्त एक ऐसा आकार है जिसमें ज़्यादा जगह मिल सकती है। तो सवाल यह भी उठ सकता है कि मधुमक्खियों ने वृत्त के आकार को क्यों नहीं अपनाया। इसके भी दो सम्भव कारण हैं, पहला कारण समझने के लिए चित्र-8 देखें।

छत्ता अगर वृत्ताकार कोषों वाला बनाया जाए तो आसपास के तीन वृत्तों के बीच में खाली स्थान बच ही जाता है और परिणाम स्वरूप वह जगह अगर भरनी हो तो मोम ज़्यादा चाहिए होगी। यह नुकसान का सौदा ही साबित होगा, क्योंकि अधिक मोम बनाने के लिए अधिक शहद की ज़रूरत होगी।

हमने पहले देखा ही है कि श्रमिक मधुमक्खियाँ कितनी मेहनत करती हैं। अब दूसरा कारण देखें। चित्र-9 में सात वृत्त और सात षट्कोण रखे गए हैं। मान लीजिए, मधुमक्खी अपने अमूल्य मोम का उपयोग कर छह बाहरी वृत्त बना लेती है। उसके बाद भी सातवाँ वृत तो अतिरिक्त मोम का उपयोग कर ही बनाना पड़ेगा क्योंकि दो पास-पास के वृत्तों की परिमिति समान यानी साझा नहीं है।

समबाहु षट्कोण बनाने में बाहर के सभी कोष्ठों की दीवार साझा होने से बीच का कोष्ठ बिना बनाए बन जाता है। षट्कोणों में समान यानी साझा परिमिति सभी जगह मिलती है। सटे हुए वृत्त या षट्कोण अलग बनाने के लिए सामान्य रूप से दो दीवारें चाहिए, पर साझा परिमिति यानी दीवारों के कारण चित्र-9 के सात षट्कोणों में 12 दीवारें नहीं बनानी पड़ेंगी। आप खुद गिनकर देख

सकते हैं। इस कारण हर 100 ग्राम मोम पर 28.5 ग्राम मोम कम इस्तेमाल होगी, इसलिए छत्ते के मधुकोष्ठों के लिए षट्कोण ही उत्तम आकार प्रतीत होता है।

कई अन्य वैज्ञानिकों ने यह भी पाया कि श्रमिक मधुमक्खियों को बाहर का काम ज़्यादा करना पड़ता है इसलिए उनकी छत्ते में जितनी सीमित आवश्यक उपस्थिति होती है, उस हिसाब से यानी कुछ छोटे प्रकोष्ठ या कोष बनाए जाते हैं। सैनिक मधुमक्खियों के लिए तुलनात्मक रूप से बड़े और रानी के लिए मूँगफली की साबुत फली जितना बड़ा प्रकोष्ठ बनाया जाता है।

कुछ अनुसन्धानकर्ता कहते हैं कि छत्ते के खानों के आकार मधुमक्खियों की प्रजाति पर और वे पृथ्वी पर किस हिस्से में पाई जाती हैं, इस पर भी निर्भर करते हैं। इसके साथ ही वे छत्ते के बाहरी पर्यावरण एवं तापमान पर भी निर्भर होते हैं। वैसे प्रकृति में ज़्यादातर षट्कोण प्रकोष्ठों वाले छत्ते ही पाए जाते हैं। मधुमक्खी के अलावा कुछ बड़े भ्रमर प्रजाति के कीड़े भी षट्कोणीय प्रकोष्ठों वाले छत्ते बनाते हैं। उनमें मोम के अलावा भी अन्य सामग्री का इस्तेमाल होता है। उनके लिए भी ऐसा क्यों और कैसे, यह सवाल बरकरार है।

जीवविज्ञान के अध्ययन से एक बात तो सीखने को मिलती है कि प्रकृति कभी घाटे का सौदा नहीं करती।

प्रक्षाली देसाई: पिछले 35 सालों से झाबुआ, पेटलावद में *संपर्क* संस्था के साथ काम कर रही हैं। पहले आदिवासियों, विशेषकर महिलाओं के स्वास्थ्य को लेकर काम किया। वर्तमान में बुनियादी शिक्षा पर काम कर रही हैं जिसमें शिक्षा के साथ-साथ बिजली से सम्बन्धित काम, मोमबत्ती बनाना, साबुन बनाना आदि शामिल हैं। शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न पहलों में इन्होंने रात्रिशाला भी शुरू करवाई।

यह सवाल प्रक्षाली के मन में सन् 1988 में उनके कॉलेज के दिनों में एपीकल्चर परियोजना कार्य के दौरान आया था। लगभग 35 साल बाद प्रक्षाली ने अपने सवाल पर चिन्तन कर स्वयं उसका जवाब लिखा और *संदर्भ* के साथ साझा किया।

सभी चित्र: प्रक्षाली देसाई।

इस बार का सवाल: बाल सफेद क्यों होते हैं?

- सावन यादव, होशंगाबाद, म.प्र.

आप हमें अपने जवाब sandarbh@eklavya.in पर भेज सकते हैं।

प्रकाशित जवाब देने वाले शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं अन्य को पुस्तकों का गिफ्ट वाउचर भेजा जाएगा जिससे वे पिटाराकार्ट से अपनी मनपसन्द किताबें खरीद सकते हैं।

RNI No.: MPHIN/2007/20203

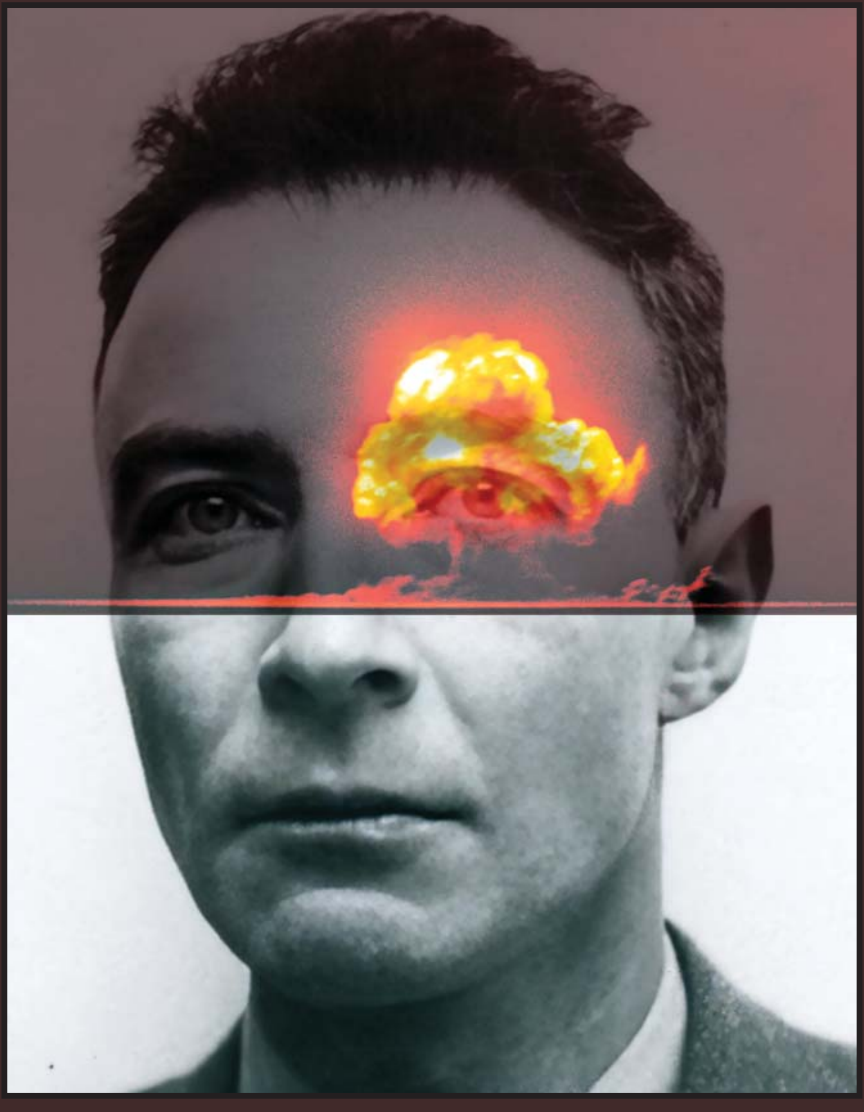

प्रकाशक, मुद्रक, टुलटुल बिस्वास द्वारा निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन की ओर से, एकलव्य, जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (म.प्र.) से प्रकाशित तथा भण्डारी प्रेस, ई-2/111, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462 016 (म.प्र.) से मुद्रित, सम्पादक: राजेश खिंदरी।